Chapter-5

अध्याय : 5 :: भ्रष्ट राजनीति से उत्पन्न समस्याएं ::

:: अध्याय :5 ::

:: भ्रष्ट राजनीति से उत्पन्न समस्याएं ::

पूर्ववर्ती विवेचन में इस तथ्य को एकाधिक बार रेखांकित किया गया है कि मानव-जीवन की समस्याएं एक श्रृंखला के मानिंद हैं , अतः उनकी कड़ियां परस्पर गूंथी हुई हैं । कुछ सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं का उत्स हमारी साम्प्रतिक या निकट अतीत की भ्रष्ट राजनीति में है , तो कई राजनीतिक समस्याओं का मूल सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं में पाया जाता है । उदाहरणार्थ यह देखा जा सकता है कि ग्रामभित्तीय सांप्रतिक राजनीति में प्रायः पुराने जमींदार , राजा-महाराजा या सामंत-सरदार तथा महाजन सर्वसत्ताधीश हैं , क्योंकि अंग्रेजों के जमाने से ही यह वर्ग अपनी विशेष आर्थिक संपन्नता के कारण प्रभु-सत्ता वर्ग के रूप में रहा है । स्वाधीनता के उपरान्त उसने पुनः अपनी आर्थिक सर्वोपरिता के कारण सत्ता के मुख्य केन्द्रों को अपने अधीनस्थ कर लिया है । "राग दरबारी" के वैद्यजी , "जल टूटता हुआ" के महिपसिंह , "अलग अलग वैतरणी" के जैपालसिंह प्रभृति इसके ज्वलंत उदाहरण हैं । अतः इसमें आर्थिक एवं सामाजिक दोनों प्रकार के कारण हैं । आर्थिक संपन्नता के कारण ये अन्य लोगों के हितों को खरीद सकते हैं तथा अपनी आर्थिक सर्वोपरिता के कारण ये दूसरे लोगों को दबा भी सकते हैं । समाज के निम्न तबके के लोगों में उनकी सामाजिक स्थिति तथा सदियों पुराने संस्कारों के कारण सामंत-वर्ग के लोगों के प्रति एक मनोवैज्ञानिक प्रकार का अहोभाव दृष्टिगोचर होता है , अतः यह प्रायः देखा जा स सकता है कि इन लोगों को चुनाव द्वारा प्रभु-सत्ता में स्थापित करने में इन लोगों की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है । वस्तुतः उनकी पुरानी भावनाओं तथा संस्कारों को यहां भुनाया जाता है और उसमें यह प्रभु-सत्ता वर्ग पूर्णतया दक्ष तथा चतुर है । अभिप्राय यह कि कोई भी मानवीय समस्या पूर्णरूपेण सामाजिक, आर्थिक वा राजनीतिक नहीं हुआ करती , परंतु एक दूसरे की निपज हुआ करती है ।

वस्तुतः गांधीजी की स्वतंत्रता-विषयक जो परिकल्पना थी , उस पर हमारी स्वतंत्रता खरी नहीं उतरती है । गांधीजी के राष्ट्रव्यापी आंदोलन के पीछे केवल अंग्रेजों को इस देश से खदेड़ना ही एक-मात्र उद्देश्य नहीं था , अपितु वे इस देश को समग्रतया —— सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, भाषिक सभी दृष्टियों से एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में विकसित करना चाहते थे । वे इस देश के सभी वर्गों को , और विशेषतः शोषित व पिछड़े वर्गों को स्वतंत्रता दिलाना चाहते थे । वे देश को आर्थिक दृष्टया स्वतंत्र बनाना चाहते थे । यही कारण है कि उन्होंने देश की स्वाधीनता के साथ अनेक मुद्दों को संकलित कर लिया था । परंतु स्वाधीनता आंदोलन के अंतिम चरण में हमारे देश के कतिपय स्वार्थी लघु-दृष्टि -युक्त नेताओं के अधैर्य के कारण गांधीजी के सपने धरे रह गये । गांधीजी के जीवन-काल में ही उनकी उपेक्षा का प्रारंभ हो गया था और उनकी मृत्यु के बाद तो शनैः शनैः ही उनका बिलकुल भुला दिया गया । तभी तो माखनलाल चतुर्वेदी ने लिखा था — " उनकी यादों के तरू-तृण-पल्लव लो अब तो हम तो हम छोड़ चले / कसमें रावी के तट खायीं थु यमुना के तट पर तोड़ चले ।। " [1] सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने अपनी "पंचमहाभूत" नामक कविता में लिखा —— " तुम्हारे चश्मे / उन्हीं को पहनाकर अंधों को दिखाये जा रहे हैं करिश्मे ! / तुम्हारी लाठी / पुलिस के हाथ का डंडा बनकर / लोगों की पीठ की धुलाई कर रही है / तुम्हारी चप्पल ? / गरीबी की चांद गंजी करने के काम आ गयी / तुम्हारी घड़ी ? / देश की नब्ज़ की तरह बंद है / और तुम्हारी धोती ? / राष्ट्रीय समारोहों पर स्वयं सेवकों के बिल्ले बनाने के काम आ गयी / अच्छा हुआ है ! जननायक तुम चले गये / अन्यथा तुम्हारे शरीर का ये लोग क्या करते कुछ पता नहीं । " [2] एक अन्य कविता में कहा गया है -- " पन्द्रह अगस्त उन्नीस सौ सैंतालीस / वह मध्य-बिंदु है हमारे देश की स्वाधीनता के इतिहास का / जहां से हमने पलटना सीखा / जहां से हमने उलटना सीखा / जहां से हमने मुड़ना सीखा / सिद्धांतों से सिद्धांतों की खोल को ओढ़कर । " [3]

महात्मा गांधी के केवल हिन्दू-मुस्लिम एकता वाले मुद्दे को भी लें तो भी स्वातंत्र्योत्तर काल में इसे लेकर वैमनस्य की जो खाई बढ़ती जा रही है , उसकी विडंबना को आत्मसात कर सकते हैं । इस संबंध में उनके कुछ विचार दृष्टव्य हैं --

/1/ " हिन्दुस्तान उन सब लोगों का है जो यहां पैदा हुए और पले

है और जो दूसरे मुल्क का आसरा नहीं तक सकते । इसलिए वह जितना हिन्दुओं का है , उतना ही पारसियों, यहूदियों, हिन्दुस्तानी-इसाइयों, मुसलमानों और दूसरे गैर हिन्दुओं का भी है । आज़ाद हिन्दुस्तान में राज हिन्दुओं का नहीं बल्कि हिन्दुस्तानियों का होगा , वह किसी धार्मिक पंथ या संप्रदाय के बहुमत पर नहीं , बिना किसी धार्मिक भेदभाव के निर्वाचित समूची जनता के प्रतिनिधियों पर आधारित होगा । " [4]

/2/ " धर्म एक निजी विषय है , जिसका राजनीति में कोई स्थान नहीं होना चाहिए । विदेशी हुकूमत की वजह से देश में जो अस्वाभाविक परिस्थिति पैदा हो गयी है , उसीकी बदौलत हमारे यहां धर्म के अनुसार इतने अस्वाभाविक विभाग हो गए हैं । जब देश से विदेशी हुकूमत उठ जायेगी तो हम इन झूठे बकबके नारों और आदर्शों से चिपके रहने की अपनी इस बेवकूफी पर खुद ही हँसेंगे । अगर अंग्रेजों की जगह देश में हिन्दुओं की या दूसरे किसी संप्रदाय की हुकूमत ही कायम होने वाली हो तो अंग्रेजों के निकाल बाहर करने की पुकार में कोई बल नहीं रह जाता । वह स्वराज्य नहीं होगा । " [5]

/3/ एक अखबार ने बड़ी गंभीरता से यह सुझाव रखा है कि अगर मौजूदा सरकार में शक्ति नहीं है यानि अगर जनता सरकार को उचित काम न करने दे , तो वह सरकार उन लोगों के लिए अपनी जगह खाली कर दे , जो सारे मुसलमानों को मार डालने या उन्हें देश-निकाला देने का पागलपन भरा काम कर सके । यह ऐसी सलाह है कि जिस पर चलकर देश खुदकुशी कर सकता है और हिन्दू धर्म जड़ से बरबाद हो सकता है । मुझे लगता है कि ऐसे अखबार तो आज़ाद हिन्दुस्तान में रहने लायक ही नहीं है । प्रेस की आज़ादी का यह मतलब नहीं कि वह जनता के मन में जहरीले विचार पैदा करें । जो लोग ऐसी नीति पर चलना चाहते हैं वे अपनी सरकार से इस्तिफा देने के लिए भले कहें , मगर जो दुनिया शांति के लिए अभी तक हिन्दुस्तान की तरफ ताकती रही है , वह आगे से ऐसा करना बन्द कर देगी । हर हालत में जब तक मेरी सांस चलती है , मैं ऐसे निरे पागलपन के खिलाफ अपनी सलाह देना जारी रखूंगा । " [6]

/4/ " मुझे हिन्दू होने का गर्व अवश्य है , परन्तु मेरा हिन्दू धर्म न तो असहिष्णु है और न बहिष्कारवादी है । हिन्दू धर्म की विशिष्टता , जैसा मैंने उसे समझा है , यह है कि उसने सब धर्मों की उत्तम बातों को आत्मसात कर

लिया है । यदि हिन्दू यह मानते हों कि भारत में अहिन्दुओं के समान और सम्मानपूर्ण स्थान नहीं है और मुसलमान भारत में रहना चाहें तो उन्हें घटिया दर्जे से संतोष करना होगा ... तो उसका परिणाम यह होगा कि हिन्दू-धर्म श्रीहीन हो जायेगा ... मैं आपको चेतावनी देता हूं कि अगर आपके खिलाफ लगाया जाने वाला यह आरोप सही हो कि मुसलमानों को मारने में आपके संगठन का हाथ है तो उसका परिणाम बुरा होगा । " 7

~~5~~ /5/ " कनाट प्लेस के पास एक मस्जिद में हनुमानजी बिराजते हैं, मेरे लिए वह मात्र एक पत्थर की टुकड़ा है जिसकी आकृति हनुमानजी की तरह है और उस पर सिंदूर लगा दिया गया है । वे पूजा के लायक नहीं । पूजा के लिए उनकी प्राण-प्रतिष्ठा होनी चाहिए, उन्हें हक से बैठना चाहिए । ऐसे जहां-तहां मूर्ति रखना धर्म का अपमान करना है । उससे मूर्ति भी बिगड़ती है और मस्जिद भी । मस्जिदों की रक्षा के लिए पुलिस का पहरा क्यों होना चाहिए ? सरकार को पुलिस का पहरा क्यों रखना पड़े ? हम उन्हें कह दें कि हम अपनी मूर्तियां खुद उठा लेंगे, मस्जिदों की मरम्मत कर देंगे । सरकार यह सब करना पड़े, यह शर्म की बात है । हम हिन्दू मूर्ति-पूजक होकर, अपनी मूर्तियों का अपमान करते हैं और अपना धर्म बिगाड़ते हैं । " 8

~~6~~/6/ ~~मु~~ " मुझे पता चला है कि कुछ कांग्रेसी भी यह मानते हैं कि मुसलमान यहां न रहें । वे मानते हैं कि ऐसा होने पर ही हिन्दू धर्म की उन्नति होगी । परन्तु वे नहीं जानते कि इससे हिन्दू धर्म का लगातार नाश हो रहा है । इन लोगों द्वारा यह रवैया न छोड़ना खतरनाक होगा .... काफी देखने के बाद मैं यह महसूस करता हूं कि यद्यपि हम सब तो पागल नहीं हो गए हैं, फिर भी कांग्रेस जनों की काफी बड़ी संख्या अपना दिमाग खो बैठी है .... मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि ~~हम~~ अगर हम इस पागलपन का इलाज नहीं करेंगे, तो जो आज़ादी हमने हासिल की है उसे हम खो देंगे .... मैं जानता हूं कि कुछ लोग कह रहे हैं कि कांग्रेस ने अपनी आत्मा को मुसलमानों के चरणों में रख दिया है, गांधी ? वह जैसा चाहे बकता रहे । यह तो गया-बीता हो गया है । जवाहरलाल भी कोई अच्छा नहीं है । रही बात सरदार पटेल की, सो उसमें कुछ है । वह कुछ अंश में सच्चा हिन्दू है । परन्तु आखिर तो वह भी

कांग्रेसी ही है । ऐसी बातों से हमारा कोई फायदा नहीं होगा । हिंसक-गुण्डागिरी से न तो हिन्दू धर्म की रक्षा होगी , न सिक्ख धर्म की । गुरु ग्रंथ-साहब में भी ऐसी शिक्षा नहीं दी गई है । ईसाई धर्म भी ये बातें नहीं सिखाता । इस्लाम की रक्षा तलवार से नहीं हुई है । राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के बारे में मैं बहुत-सी बातें सुनता रहा हूं । मैंने यह सुना है कि इस सारी शरारत की जड़ संघ है । हिन्दू धर्म की रक्षा ऐसे हत्याकांडों से नहीं हो सकती । आपको अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करनी होगी । वह रक्षा आप तभी कर सकते हैं जब आप दयावान और वीर बनें और सदा जागरूक रहेंगे , अन्यथा एक दिन ऐसा आयेगा जब आपको इस मूर्खता का पछतावा होगा , जिसके कारण यह सुंदर और बहुमूल्य फल आपके हाथ से निकल जायेगा । मैं आशा करता हूं कि वैसा दिन कभी नहीं आयेगा । हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि लोकमत की शक्ति तलवारों से अधिक होती है । " 9

/7/ " हिन्दुस्तान [अविभाजित] के हिन्दू और मुसलमान विदेशों में रहने वाले हिन्दुस्तानियों के सवालों पर दो राय नहीं है , इससे साबित होता है कि दो राष्ट्रों का उसूल गलत है । इससे आप लोगों को मेरे कहने से जो सबक सिखना चाहिए , वह यह है कि दुनिया में प्रेम सबसे ऊंची चीज है । अगर हिन्दुस्तान के बाहर हिन्दू और मुसलमान एक आवाज़ में बोल सकते हैं , तो यहां भी वे ~~जरूर~~ जरूर ऐसा कर सकते हैं , शर्त यह है कि उनके दिलों में प्रेम हो .... अगर ~~अबक~~ आज हम ऐसा कर ~~सकें~~ सके और बाहर की तरह हिन्दुस्तान में भी एक आवाज़ से बोल सके , तो हम आज की मुसीबतों से पार हो जायेंगे । " 10

यहां इतना विस्तारपूर्वक यह सब लिखा गया है , उसके पीछे उद्देश्य यह है कि स्वातंत्र्योत्तर काल में हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य का यह विष कम होने के स्थान पर बढ़ा ही है । मेरठ, अलीगढ़, मुरादाबाद , अहमदाबाद , बड़ौदा आदि शहरों में आयेदिन जो कौमी-हुल्लड़ होते हैं , उसमें भ्रष्ट राजनीतिज्ञों का हाथ है । अंग्रेजों ने तो अपने फायदे और अपने राष्ट्रीय व जातीय हित के लिए , अपनी कूटनीति के अनुसार हिन्दू-मुसलमानों में शत्रुता का बीज-वपन किया , पर आज़ादी के बाद हम उसे खाद और पानी क्यों दे रहे हैं ? सीधी-सी बात है । वर्तमान सरकार भी अंग्रेजों के ही नक्शे-कदम पर चल रही

है । कहीं कोई परिवर्तन नहीं है । यह महज़ ट्रान्सफर आफ पावर है । पहले यह सत्ता अंग्रेजों के हाथों में थी , अब वह इस देश के कुछ इने-गिने लोगों के हाथों में आ गई है । तभी तो कहा गया है —

" जो पहले होता रहा , अब वो ही हाल ।
आखिर चिड़िया क्या करे डाल बने हैं जाल ।। " ¹¹

जो हश्र हिन्दू-मुस्लिम एकता-विषयक गांधी-विचारों का हुआ ~~हक~~ है , करीब-करीब वही हश्र गांधी के उन तमाम मुद्दों का हुआ है , जिनमें हम ग्रामोद्धार, कुटीर-उद्योग, गृह-उद्योग , हरिजनोद्धार , दलितोद्धार आदि को ले सकते हैं । यह हुआ है और आगे तेजी से हो रहा है , उसके पीछे एक-मात्र कारण यह है कि देश की राजनीति की डोर दिन-प्रतिदिन भ्रष्ट लोगों के हाथों में जा रही है , जिसके संकेत हमें "मैला आंचल" , "बलचनमा" , "सती मैया का चौरा" , "जल टूटता हुआ" , "अलग अलग वैतरणी " , " सूखता हुआ तालाब" , "दिल एक सादा कागज ", "राग दरबारी " , " प्रेम अपवित्र नदी" , "प्रश्न और मरीचिका" प्रभृति उपन्यासों में मिल जाते हैं ।

स्वाधीनता के उपरान्त हमारे देश में किस प्रकार के लोग नेता के रूप में उभर-कर आये इसका एक व्यंग्यात्मक चित्र हमें "राग दरबारी" उपन्यास में मिलता है — " वैद्यजी थे , हैं और रहेंगे । अंग्रेजों के जमाने में वे अंग्रेजों के लिए श्रद्धा ~~रखते थे~~ दिखाते थे । देसी हुकूमत के दिनों में वे देसी हाकिमों के लिए श्रद्धा दिखाने लगे । वे देश के पुराने सेवक थे । पिछले महायुद्ध के दिनों में , जब देश को जापान से खतरा पैदा हो गया था , उन्होंने सुदूर पूर्व में लड़ने के लिए बहुत-से सिपाही भरती करवाये । अब जरूरत पड़ने पर रातोंरात वे अपने राजनीतिक गुट में सैंकड़ों सदस्य भरती करा देते थे । पहले भी वे जनता की सेवा जज की इजलास में जूरी और एसेसर बनकर , दीवानी के मुकदमों में जायदादों के सिपुर्ददार होकर और गांव के जमींदारों में लम्बरदार के रूप में करते थे । अब वे कोपरेटिव यूनियन के मैनेजिंग डायरेक्टर और कौलेज के मैनेजर थे । वास्तव में वे इन पदों पर काम नहीं करना चाहते थे क्योंकि उन्हें पदों का लालच नहीं था । पर उस क्षेत्र ~~के~~ में जिम्मेदारी के इन कामों को निभाने-वाला कोई आदमी ही न था और वहां जितने नवयुवक थे , वे पूरे देश के नवयुवकों की तरह निकम्मे थे , इसीलिए उन्हें बुढ़ापे में इन पदों को संभालना

पड़ा था । बुढ़ापा । वैद्यजी के लिए इस शब्द का इस्तेमाल तो सिर्फ अरिथमेटिक की मजबूरी के कारण करना पड़ा था , क्योंकि गिनती में उनकी उमर बासठ साल हो गयी थी । पर राजधानियों में रहकर देश-सेवा करने वाले सैंकड़ों म महापुरुषों की तरह वे भी उमर के बावजूद बूढ़े नहीं हुए थे और उन्हीं महापुरुषों की तरह वैद्यजी की यह प्रतिज्ञा थी कि हम बूढ़े तभी होंगे जब कि मर जायेंगे और जब तक लोग हमें यकीन न दिला देंगे कि तुम मर गये हो तब तक अपने को जीवित ही समझेंगे और देश-सेवा करते रहेंगे । हर बड़े राजनीतिज्ञ की तरह वे राजनीति से नफरत करते थे और राजनीतिज्ञों का मज़ाक उड़ाते थे । गांधी की तरह अपनी राजनीतिक पार्टी में उन्होंने कोई पद नहीं लिया था , क्योंकि वे वहां नये खून को प्रोत्साहित करना चाहते थे ; पर कोओपरेटिव और कोलेज के मामलों में लोगों ने उन्हें मजबूर कर दिया था और उन्होंने मजबूर होना स्वीकार कर लिया था । " [12]

"मैला आंचल " के तहसीलदार साहब , "जल टूटता हुआ " के महीपसिंह , "अलग अलग वैतरणी " के जैपालसिंह , " आधा गांव " के कुंअरपालसिंह , " सूखता हुआ तालाब " के शिवलाल , "इमरतिया " के भगौतीप्रसाद , "बलचनमा " के फूलबाबू, "सती मैया का चौरा " के जमींदार सुगन्धराय , "धरती धन न अपना " के हरनामसिंह आदि इसी प्रकार के लोग हैं जो स्वातंत्र्योत्तर काल में भी नेता के रूप में पूरे ग्रामीण-समाज पर छाए हुए हैं ।

रेणु की क्रान्तदर्शी सूझ-बूझ ने बहुत पहले ही यह भांप लिया था कि अशिक्षा व गरीबी के महान्धकार में स्वतंत्रता महज़ एक छलावा बनकर रह जायेगी , क्योंकि जैसे ऊपर निर्दिष्ट किया जा चुका है , पहले के शोषक ही देशसेवा का मुखौटा चढ़ाकर सामने आ रहे हैं । राजनीति में (तब कांग्रेस में) कैसे-कैसे भ्रष्ट लोग प्रवेश पा रहे हैं उसका चित्र हमें उपन्यास के एक गांधीवादी चरित्र बावनदास की मनोव्यथा में मिल जाता है । एक जमाने में अंग्रेजों के पिट्ठू ऐसे तहसीलदार साहब रातोंरात बदलती फिजां को ध्यान में रखकर पैसों के बल पर कांग्रेस-पार्टी में महत्वपूर्ण स्थान हासिल कर लेते हैं , क्योंकि वे "चवन्निया " मेम्बर थोड़े ही हैं । स्वतंत्रता के दो-तीन वर्षों के भीतर ही रेणु की सूक्ष्म पैनी दृष्टि ने इस तथ्य को आत्मसात कर लिया था कि किस प्रकार भ्रष्ट एवं सत्तालोलुप नेतागण बालदेव , कालीचरण जैसे सीधे-सरल लोगों को

स्थानिक नेता बनाकर अपनी स्वार्थ-सिद्धि करते रहते हैं और समय आने पर उन्हें पहचानने से भी मुकर जाते हैं । बालदेव का शनैः शनैः एक भ्रष्ट कांग्रेसी के रूप में रूपांतरित होना भी लेखक ने बताया है । सुमरितदास "बेतार" के रूप में लेखक ने स्वातन्त्र्योत्तर काल में उभर रही एक खास किस्म की नस्ल की ओर संकेत किया है । यह नस्ल है खुशामदखोर गुलाटबाज चमचों की । रेणु ने यह स्पष्ट कर दिया है कि बावनदास जैसे सिद्धांतनिष्ठ व्यक्ति राजनीति में नहीं चल सकते । बावनदास की नृशंस हत्या और बाद में अज्ञात रूप से "चैथरिया" पीर के रूप में उसकी प्रतिष्ठा को लेखक ने एक प्रतीक रूप में लिया है । वस्तुतः यह गांधीवाद और गांधी की हत्या है । ये "देवरूप" में तो चल सकते हैं, वे "नेतारूप" में नहीं । अतः पहले तो भारतमाता विदेशियों के द्वारा पदाक्रान्त हो रही थी, अब वह अपने ही बेटों द्वारा क्षत-विक्षत होकर "जार-बेजार रो रही है । " [13]

स्वतंत्रता के बाद हमारे यहाँ राजनीति एक व्यवसाय का बाना धारण करती जा रही है और उसमें मूल्यहीन, नीतिभ्रष्ट, स्वार्थान्ध, सत्तालोलुप, समझौतापरस्त लोगों की भीड़ बढ़ती जा रही है । "प्रश्न और मरीचिका" के जयराज उपाध्याय भारत सरकार के सेक्रेटरिएट में एक ऊँचे ओहदे पर आसीन हैं । उनका भतीजा राजनीति में प्रवेश कर रहा है । इस प्रसंग पर व्यक्त उनकी टिप्पणी चिंतनीय है — " अंग्रेजी में कहावत है कि लुच्चों और लफंगों के लिए ही यह राजनीति है । तो चलो हमारे घर में भी एक विधायक बन रहा है ।" [14]

और राजनीति अब ऐसे ही लोगों का अड्डा बनती जा रही है । देश के स्वाधीनता संग्राम में काम आने वाले त्रिलोचन शर्मा, मुहम्मद शफी (प्रश्न और मरीचिका) जैसे सिद्धांतनिष्ठ और मूल्यग्राही राजनीति के पक्षधर लोग शनैः शनैः पीछे छूटते जा रहे हैं । जो रूपा आण्टी पैसों के खातिर रामकुमार गाबड़िया नामक बम्बई के एक बड़े व्यापारी के साथ एक होटल में सोती है, वह अंततः संसद का चुनाव जीत जाती है और उसके पति त्रिलोचन शर्मा जो मूल्यनिष्ठ राजनीति के समर्थक थे बुरी तरह पराजित होकर पक्षाघात के शिकार हो जाते हैं ।

स्वाधीनता के आंदोलन में जिन मुस्लिमलीगियों ने सांप्रदायिक रवैये को अपनाते हुए स्वतंत्रता के मार्ग में अनेक रोड़े अटकाये थे , उन्हीं लीगियों के साथ बाद में कांग्रेस ने अपने संकीर्ण हितों के लिए गठबंधन किया , इतना ही नहीं उन लीगियों को दूसरे राष्ट्रीय भावना से युक्त मुसलमानों से भी अधिक महत्व दिया जाने लगा । " प्रश्न और मरीचिका " के शेख मुस्तुफा कामिल एक घनघोर सांप्रदायिक भावना वाले लीगी लीडर थे , परंतु बाद में उनके कांग्रेसी हो जाने पर उन्हें मुहम्मद शफी जैसे कांग्रेसी मुसलमानों भी ज्यादा महत्व दिया जाता है । उन पुराने कांग्रेसी मुसलमानों को ऐसे लीगियों के अंतर्गत काम करना पड़ता है तब मुहम्मद शफी आक्रोशपूर्वक उसकी कटु भर्त्सना करते हैं , परंतु उनकी आवाज़ नक्कारखाने में तूती बनकर रह जाती है ।[15]

डा० लक्ष्मीनारायण लाल के उपन्यास " प्रेम अपवित्र नदी " में भी राजनीति में आ रहे भ्रष्ट लोगों का संकेत मिलता है । उपन्यास में लिलियन नामक एक विदेशी महिला उपन्यास के एक प्रमुख पात्र विष्णुपद से पूछती है कि आज़ादी की लड़ाई किस तरह के लोगों ने लड़ी थी ? उसके उत्तर में विष्णुपद जो कहता है उसकी पीड़ा मर्मान्तिक है — " वे लोग थे — जमींदारों के लड़के , अंग्रेजी व्यवस्था और दुकानदारों के युवक — जिनके बाप कहीं अंग्रेजी शराब के व्यापारी थे , कहीं अंग्रेजी वस्त्रों के थोक-विक्रेता थे , कहीं वे अंग्रेजी चाय-बागान के मैनेजर थे , कहीं वे अंग्रेजी दफ्तरों और न्यायालयों के अफसर और वकील थे , कहीं अंग्रेजी कोलेजों के प्रोफेसर -अध्यापक थे । इन्हीं पिताओं , बापों से विद्रोह करके उन युवकों ने आज़ादी की लड़ाई शुरू की । तभी वह दूसरा महायुद्ध आया । उसका काला बाज़ार खुला — इसी बाज़ार में आज़ादी की लड़त लड़ने वालों के पुत्रों ने धन कमाना शुरू किया । और जैसे ही हमें स्वतंत्रता मिली — उन पुत्रों ने जेलों से लौटे हुए अपने पिताओं से कहना शुरू किया — पिताजी, बाबूजी , इलेक्शन लड़िये ... मंत्री बनिए ... इलेक्शन लड़ने के लिए धन हमारे पास है । " [16]

प्रगतिवादी दृष्टिकोण से संपन्न "बलचनमा" उपन्यास में स्वातंत्र्योत्तर काल में सत्ता हथियाने वाले लोगों का संकेत लेखक ने अपनी पैनी व्यंग्यात्मक शैली में दे दिया है । जो जमींदार बलचनमा के पिता "ललुवा" की बुरी तरह से पिटाई

करवा के उसे मौत के घाट उतार देता है , उसीका बेटा फूलबाबू महात्मा गांधी के नमक कानून को तोड़ने के लिए गले में फूलमालाएं डाले हुए , बलि के बकरे की तरह गिरफ्तारियां दे रहा है , तो इसलिए नहीं कि उसे स्वराज लाना है , बल्कि इसलिए कि आने वाले स्वराज में अपना बड़ा भाग डिपोजीट करना है । बलचनमा कहता है — " यह जो दस-दस , पांच-पांच आदमी , कुर्ता , धोती टोपी पहनकर गले में माला डाले चढ़वा [बलिवाले] बकरे की तरह नमक बनाने जाते थे , सो मुझे बाबू लोगों का खिलवाड़ ही लगा था । ऐसे भी कहीं किसी को स्वराज मिला है । " [17] और आगे चलकर ऐसे ही लोगों के हाथों में देश की बागडोर आयी , तो इस स्थिति में "गांधीजी के सपनों का स्वराज " भला कैसे आ सकता है ? इस स्वातंत्र्योत्तर पीड़ा का चित्रण इधर के एक गीत " किसने जाना आज़ादी को ? " में हुआ है — "

" पूंजीवाद से हाथ मिलाकर
जातिवाद का जहर पिलाकर
आज़ादी के गीत ना गाओ
किसने भोगा आज़ादी को ?
किसने जाना आज़ादी को ?
बीसवीं शती के पृथा-पुत्रो
भाग्य-कृष्ण का लिए सहारा
समरांगण में तुम आये हो
हित को अपने नाम मिलाकर
जीत को अपने नाम मिलाकर
आज़ादी के गीत ना गाओ ... " [18]

स्वातंत्र्योत्तर काल में कैसे-कैसे लोग नेतापद को हथिया बैठे हैं उसका व्यंग्यात्मक चित्रण डा० राही मासूम रज़ा के उपन्यास "दिल एक सादा कागज़ " में मिलता है — " ठाकुर साहब बड़े रोब-दाब के आदमी थे । लड़ाई के दिनों में न जाने कितना चंदा देकर राय बहादुर बने थे , पर जब उन्होंने देखा कि हिन्दुस्तान आज़ाद हुए बिना नहीं मानेगा तो ठाकुर साहब ने सन् '46 में राय साहब की पदवी लौटा दी । उनके पदवी लौटाते ही लोग भूल गये कि सन् '42 में

किस तरह उन्होंने सरकार का साथ दिया था । "[19]

उपन्यासों में वर्णित उपर्युक्त प्रसंगों व उदाहरणों से यह निष्कर्ष सहजतया निकाला जा सकता है कि आज़ादी के उपरान्त देश का सुकान पुनः ऐसे लोगों के हाथों में चला गया जिनके मुँह में गरीबों के शोषण का खून पहले से ही लगा हुआ था । " राग दरबारी " उपन्यास में इस स्थिति का व्यंग्यात्मक चित्रण इस प्रकार मिलता है — " प्रजातंत्र के बारे में उसने [रंगनाथ ने] यहाँ एक नयी बात सुनी थी , जिसका अर्थ यह था कि चूँकि चुनाव लड़ने वाले प्रायः घटिया आदमी होते हैं इसलिए एक नये घटिया आदमी द्वारा पुराने घटिया आदमी को , जिसके घटियापन को लोगों ने पहले से ही समझ-बूझ लिया है , उखाड़ना न चाहिए । "[20]

अतः हमारी आज़ादी के वे संभावित परिणाम सामने नहीं आये जिनकी कल्पना हमारे बड़े-बड़े नेताओं ने आज़ादी से पहले की थी । स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में " मोहभंग " की जो स्थिति मिलती है , उसका भी मुख्य कारण यही है । कांग्रेस के एक वयोवृद्ध नेता स्व0 पंडित कमलापति त्रिपाठी के विचार यहाँ द्रष्टव्य रहेंगे । यथा - " गाँधी का युग क्रांति का युग था और उस युग ने केवल एक राजनीतिक क्रांति नहीं कि बल्कि उसके द्वारा सामाजिक और आर्थिक क्रांति भी हुई । एक प्रकार से गाँधी ने भारत के मानव को नया मानव बना दिया । यद्यपि उस युग की मान्यताएं आज विलुप्त हो रही हैं हैं जिसके फल-स्वरूप हमारा सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन भी नीचे गिरा है । आज दुःख की बात है कि इसी कारण राष्ट्र संकट में दिखाई दे रहा है । निर्भयता जो गाँधीजी ने देश को प्रदान की थी उसका स्थान भय और असत्य ने ले लिया । खुशामद करने में हम बहुत आगे बढ़े हैं । फलतः असत्य संभाषण और स्वार्थ-लोलुपता का बाज़ार गर्म हो गया है । परस्पर अविश्वास फैला है । कथनी और करनी में इतना अंतर है कि मालूम नहीं होता कि भविष्य में क्या बनने वाला है । "[21]

ग्रामीण तबकों की राजनीति में ऊँची जातियों का वर्चस्वः

यह प्रायः देखा गया है कि कि ग्रामीण तबकों में ऊँची जातियों का वर्चस्व पहले से था और अब भी वही चला आ रहा है । अतः सामंतकालीन पुराने

संस्कारों के कारण वे नये परिवर्तनों का हृदय से स्वागत नहीं करते । फलतः स्वाधीनता के उपरान्त भी "यथास्थितिवाद" का वातावरण बना रहा । डा0 ~~उडि-स्स~~ डी. एस. चौधरी के अध्ययन में इसे लक्षित किया जा सकता है -- " अवर डेटा रीविल्ड थेट आउट आफ द 58 प्री-पंचायती-राज लीडर्स , द सिग्मेण्ट आफ द लीडर्स (ब्राह्मिन्स 22.41 प्रतिशत) , (राजपूत्स 20.68 %), जाट्स 18.96 %) इन विलेज पंचायत्स बिलोंग टू हाई कास्ट्स . आन्ली 12.06 % एण्ड 10.34 लीडर्स वेर फ्रोम द शिड्यूल्ड कास्ट्स एण्ड शिड्यूल्ड ट्राइब्स रिस्पेक्टीवली. द अधर लोअर कास्ट्स लाइक मीना, बार्बर , कारपेण्टरएक्सेट्रा हेड बीन रीप्रेजेन्टेड इन विलेज पंचायत ओन्ली बाय 10.34 % आफ द लीडर्स. धीस फाइडिंग एण्डोर्सिस द ओब्जर्वेशन्स आफ लेविस , धिलोन , मजूमदार , हटन एक्सेट्रा थेट द पावर इन इण्डियन विलेजिस टेण्ड्स टु बी बेस्टेड वेस्टेड इन द हेण्ड्स आफ द हायर कास्ट्स हू हेव बीन डेमिनेंटिंग द की डीसिसन्स इन द रूरल कोम्युनिटी मेइनली बिकोज आफ द अपोर्च्युनीटिज़ अवेलेबल टू हाई कास्ट्स इन टर्म्स आफ थेर बीइंग इकोनोमिकली बेटर आफ़ एण्ड सोसियली डोमिनंट ." 22

" जल टूटता हुआ " के महीपसिंह , "अलग अलग वैतरणी " के जैपालसिंह , "बलचनमा" के फूलबाबू , " मैला आँचल " के तहसीलदार साहब , "राग दरबारी " के वैद्यजी , "नाग वल्लरी " के ठाकुर कल्याणसिंह आदि इसके उदाहरण हैं ।

"दिल एक सादा कागज़ " (डा0 राही मासूम रज़ा) के ठाकुर साहब को यह बात कतई पसंद नहीं आती कि केला जैसा एक सामान्य आदमी ठीक उनके जैसा पाखाना अपने घर के सामने बनवाये । उसमें उन्हें अपनी नाक कटती-सी नजर आती है । लेखक ने इसका बड़ा व्यंग्यात्मक ब्यौरा देते हुए लिखा है -- " माना कि जमींदारी खत्म हो चुकी है । फिर भी साहब मरा हाथी लाख टके का होता है । ठाकुर साहब फिर ठाकुर साहब थे । और इसलिए बात बिगड़ गई । ठाकुर साहब तन गये कि पाखाना नहीं बनेगा । बायें बाज़ू की पार्टियां यह तय नहीं कर पा रहीं थीं कि सामराज विरोधी लड़ाई है कि नहीं । कांग्रेस सन्नाटे में थी कि वह ठाकुर साहब को नाखुश करना नहीं चाहती थी परन्तु यह भी नहीं चाहती थी कि लोग यह कहें कि कांग्रेस केला के साथ

न होकर ठाकुर साहब के साथ है क्योंकि इस कान्स्टीट्युएन्सी में ठाकुर वोट न होने के बराबर थे । तो इस क्षेत्र के एम.एल.ए. साहब लखनऊ में आराम से बीमार पड़ गए । एम.पी. साहब महाराष्ट्र में बाढ़ पीड़ित क्षेत्र का दौरा करने चले गये । जनसंघ हैरान कि किसका साथ दें । ऊंची जाति के हिन्दू का साथ देती है तो नीची जाति वाले और ख़फ़ा हो जायेंगे । " [23]

यहां पर सामन्तवादी {फ़्यूडल} मनोवृत्ति का परिचय तो मिलता ही है, साथ में हमारी राजनीतिक पार्टियों के सोच व चिंतन पर भी व्यंग्य किया गया है कि उनके पास "वोटपरस्ती" के अतिरिक्त और कोई चिंतन नहीं है । "अलग अलग वैतरणी" के जैपालसिंह पहले इसलिए शहर में भाग जाते हैं कि स्वराज्य आने से छोटी जातियों का साहस बढ़ेगा, सिर झुकाकर चलने वाले अब सिर तानकर चलेंगे । परन्तु जब वे देखते हैं कि स्वराज्य के बाद खास कुछ नहीं बदलता है, वे ही पुरानी ताकतें एक नये स्वरूप में सामने आ रही हैं, तो वे भी कसम तोड़कर पुनः गांव चले आते हैं ।

इधर ग्रामीण तबके की राजनीति में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के कुछ लोग आगे आए हैं, परन्तु उनका प्रभाव ज्यादा नहीं है । वे प्रायः ऊंची जाति के लोगों-नेताओं द्वारा शासित रहते हैं, जिसे "नाग वल्लरी", "आधा गांव", "अलग अलग वैतरणी" प्रभृति उपन्यासों में लक्षित किया जा चुका है । प्रायः वैयक्तिक लाभों से वे संतुष्ट हो जाते हैं । फलतः उनमें भी एक नयी बिरादरी का जन्म होता जा रहा है और गांधी के स्वराज्य के फल जो अंतिम लोगों तक पहुंचने चाहिए, बीच में ही कहीं खा लिए जाते हैं । डा० डी.एस. चौधरी के उपर्युक्त अध्ययन में ही लिखा गया है कि — " द परसेण्टेज आफ शिड्यूल्ड कास्ट्स एण्ड शिड्यूल्ड ट्राइब्स मे हैवर=इनक्रीज्ड हैव इनक्रीज्ड आफ्टर द इन्ट्रोडक्शन आफ पंचायती राज बिकोज़ आफ द लार्जर रिजर्वेशन आफ द सीट्स इन धीज़ बोडीज़ एण्ड आल्सो बिकाज़ आफ द मैजोरिटी आफ शिड्यूल्ड कास्ट्स एण्ड शिड्यूल्ड ट्राइब्स पोप्युलेशन इन सर्टन डिस्ट्रीक्ट्स. एट द सेम टाईम, द मोर्डन इन्टिग्रेटिव इण्टिग्रेटिव एजेन्सीज़ लाईक द पार्टी, इण्टरेस्ट ग्रुप्स, सेक्यूलर एक्टीविटीज़ आफ द कास्ट्स थेमसेल्व्ज़ एण्ड द रिजर्वेशन आफ द शिड्यूल्ड कास्ट्स एण्ड अधर लोअर कास्ट्स हैव सर्टनली मेड ए सिग्नीफिकण्ट ब्रेकथ्रू इन द डोमिनन्स आफ कास्ट-सिस्टम. बट द सिच्युएशन स्टील रीमेन्स फार फ्रोम सटीसफेक्टरी." [24]

अर्थात् संक्षेप में कहा जाय तो जातिवाद एवं आरक्षण-नीति के कारण पिछड़ी जातियों के कुछ लोगों में चेतना आई है , परन्तु उसके अभिष्ट अभीष्ट परिणाम अभी संतोष-जनक रूप में सामने नहीं आ रहे हैं ।

ग्रामीण-नेतागिरी में ऊंची शिक्षा का अभाव : ग्रामीण नेता-गिरी में प्रायः ऊंची शिक्षा का अभाव मिलता है । ऊंची जातियों के होते हुए भी वे प्रायः अशि-क्षित , कमशिक्षित या अर्द्ध-शिक्षित होते हैं । अतः राजनीति का कोई व्यापक दृष्टिकोण उनके सम्मुख नहीं होता । वे संकीर्ण , स्वकेन्द्रित , स्वार्थी , सत्ता-मूलक राजनीति के पंक में दिनरात डूबे रहते हैं । उनके पढ़े-लिखे पुत्र-पुत्री या पुत्रवधुएं शहरों में नौकरी-धंधों में व्यस्त रहते हैं । इस कारण उनकी आर्थिक संप-न्नता एवं निश्चिंतता में और अभिवृद्धि हुई है । दूसरी तरफ अपने बड़े भाई , पिता , या दादा के राजनीतिक संबंधों के के कारण उन्हें नौकरी-धंधों में क्रमशः बढ़केच्चके पदोन्नति और परमिट से सविशेष सफलता मिलती है । ऊपर उल्लिखित सर्वेक्षण में रेखांकित किया गया है — *

" द परसेण्टेज़ आफ द इलीटरेट लीडर्स इन द प्री-पंचायती राज §31.03 % § एज़ वेल एज़ पोस्ट पंचायती राज §23.86 % § इज़ु सिग्नीफिकण्ट इनफ टु सजेस्ट थेट ट्रेडीशनल इवैल्युएशन प्लेसड ओन एसक्राइब्ड स्टेटस बेज्ड ओन बर्थ एण्ड इनहेरिटेड पोज़िशन स्टील हेज़ ए कन्सीडरेबल इन-फ्लुअन्स ओन द डिस्ट्रीब्युशन आफ पोलिटिकल पावर इन रुरल इण्डिआ. सर्टनली एज्युकेशन अपटु प्राइमरी स्कूल इज़ु कोरीलेटेड विथ पंचायत लीडरशीप आफ बोथ द पिरीअड — बिफोर एण्ड आफ्टर द इन्ट्रडक्शन आफ पंचायती राज इन द पोजिटिव डायरेक्शन . द मैजोरिटी आफ द लीडर्स § 53.62 % § आफ प्री-पंचायती राज एण्ड § 53.40 % § आफ पास्ट पंचायती राज पिरीअड्स वेर एज्युकेटेड अपटु प्राइमरी स्कूल लेवल . इफ बोथ द पिरीअड्स आफ पंचायती राज आर टेकन टुगेधर मोर थेन हाफ §55.4 % § आफ द लीडर्स वेर एज्युकेटेड एटलिस्ट अपटु प्राइमरी स्कूल. धीस इज़ इनफ टु सजेस्ट थेट ट्रेडीशनल लीडरशीप बेज्ड ओन एसक्राइब्ड स्टेटस इज़ु ग्रेज्युअली बीइंग रीप्लेस्ड बाय द लीडरशीप बेज्ड ओन एचीवमेण्ट . बट नो सिग्नीफिकण्ट डिफरन्स वाज़ फाउन्ड टु एक्ज़िट बिटवीन द एज्युकेशनल लेवल्स आफ लीडर्स आफ प्री-पंचायती राज एण्ड पोस्ट पंचायती

राज पिरीअड्स. द ओन्ली डिफरन्स वाज़ु नोटिस्ड एट द हाई / हाईर सेकेण्डरी स्कूल लेवल. नन आफ द लीडर्स आफ प्री-पंचायती राज पिरीअड्स वाज़ एज्युकेटेड टु धीस लेवल. .... बट धीस शुड नाट बी रीगार्डेड एज़ ए सिग्नीफिकण्ट एचीवमेण्ट सिन्स द राईज़ इन द परसेण्टेज़ आफ लीडर्स हेविंग द हाईर एज्युकेशन लेवल इज़ नोट एप्रिसीएबल . "[25]

अतः ये ग्रामीण नेता प्रायः शहर के अपेक्षाकृत अधिक शिक्षित नेताओं द्वारा परिचालित होते रहते हैं । यह हमारे देश की एक विडंबना है कि उच्च-शिक्षित , सुशिक्षित एवं किसी-किसी विषय-विशेष या क्षेत्र-विशेष के तज्ञ या विशेषज्ञ राजनीति के क्षेत्र में बहुत कम आते हैं । ऊपर जो ग्रामीण तबके के नेताओं के कम शिक्षित होने की बात कही गई है , उसका अर्थ यह कतई नहीं लिया जाय कि ग्रामीण तबकों में शिक्षित लोग बिलकुल होते ही नहीं है । परंतु विडंबना यह है कि ग्रामीण तबके के शिक्षित लोग प्रायः शहरों में अच्छी व सुरक्षित नौकरियों में चले जाते हैं । बुद्धिजीवियों का राजनीति के प्रति नकारात्मक रवैया ही इसमें कारणभूत है । वे राजनीति को एक गंदा क्षेत्र समझते हैं , परंतु सभी ऐसा समझेंगे तो फिर राजनीति में अच्छे लोग कहां से आयेंगे ? एक शेर में कहा गया है --

" चाबियां चोरों को सरे आम थमा दीं
अब झुंझलाते बेवजह गलत कारोबार क्यों ? "[26]

प्रेमचन्द " कला जीवन के लिए " के पक्षधर थे । उनका कहना था कि "कला कला के लिए " का सिद्धांत तब चल सकता है जब देश व समाज में सुख-समृद्धि , समानता, स्वतंत्रता , न्याय इत्यादि का साम्राज्य हो ; जब चारों तरफ आग लगी हुई हो ; जब विषमता , विसंगति , विद्रूपता और न्यायिक विकलांगता का नंगा नाच चल रहा हो ; तब " कला कला के लिए " का राग आलापना जलते रोम पर फ्लूडल बजाने जैसा होगा । ठीक इसी बात को प्रकारान्तर से हम कह सकते हैं कि जब देश व समाज में ~~सुख-समृद्धि~~ सुख-समृद्धि , समानता, न्याय , स्वतंत्रता आदि का साम्राज्य हो तब तो कोई बुद्धिजीवी अपने- ~~क्षे-में~~ क्षेत्र में कार्यलीन रह सकता है ; परंतु उसकी विपरीत स्थिति में उसकी वह तटस्थता निरी कायरता एवं अहम्मन्यता बनकर रह जाती है , जो देश व समाज को निश्चित रूप से पतनोन्मुखी बना सकती है । गांधी , नेहरू , पटेल , मौलाना, भगतसिंह और आज़ाद ने यदि यह सोचा होता तो क्या हम कभी भी स्वाधीन

हो सकते थे ? वस्तुतः इतिहास इस बात का गवाह है कि जब-जब बुद्धिजीवी या चिंतक-वर्ग ने सम्मिलित ढंग से कोई आह्वान दिया है, तब निश्चित रूप से उसने इतिहास को एक मोड़ दिया है। हमारा स्वाधीनता-आंदोलन उसका एक ज्वलंत उदाहरण है। अभी निकट अतीत में बांगला-देश की मुक्ति " में वहां के बुद्धिजीवियों से संगठित "मुक्तिवाहिनी" की भूमिका तो सुपरीक्षित है। चाणक्य के बिना चन्द्रगुप्त का कोई अर्थ नहीं है। वस्तुतः चन्द्रगुप्त को चन्द्रगुप्त बनाने वाला चाणक्य ही है, परन्तु दुर्भाग्य से आज़ादी के बाद हमारा बुद्धिजीवी वर्ग पुनः निष्क्रिय व ~~सुविधा~~ सुविधाभोगी हो गया है, जिसके फलस्वरूप राजनीति में अधकचरे, स्वार्थी, संकीर्ण, भ्रष्ट, बिना चेहरों के मुखौटाधारी लोगों की भीड़ बढ़ रही है।

<u>राजनीति और नौकरशाही का गठबंधन</u> : अंग्रेजी प्रशासन ने हमें ब्युरोक्रसी की भेंट की।

सरकारें आती हैं और जाती हैं, पर नौकरशाह बने रहते हैं। भ्रष्ट राज-नीतिज्ञों की अशिक्षा, अकुशलता, अधकचरापन आदि से लाभ उठाते हुए वे अपनी सत्ता और संपन्नता बढ़ा रहे हैं। उनका लाभ इसीमें है कि ऐसे ही अर्धदग्ध, अर्द्धशिक्षित लोग राजनीति पर छाये रहें, ताकि उनकी चांदी होती रहे। फणीश्वरनाथ रेणु ने "मैला आंचल" उपन्यास में कलात्मक ढंग से इस बात को उकेरा है कि आज़ादी के बाद हमारे देश का शासन कैसे-कैसे भ्रष्ट लोगों के हाथों में चला गया। आज़ादी के उस महा-यज्ञ में जिन्होंने अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया ऐसे बावनदास जैसे लोग तो महज़ "चैथरिया पीर" बनकर रह गये या देश की मुख्यधारा से कट गये। समाजवादी लेखक मन्मथनाथ गुप्त द्वारा प्रणीत उपन्यास "शहीद और शोहदे " में उन्होंने सरकारी तंत्र के नाभि-श्वास समान नौकरशाही-तंत्र की बात को उठाया है। हमारे यहां सरकार में परि-वर्तन होने के बावजूद नीतियों में खास परिवर्तन नहीं होता, क्योंकि वस्तुतः इन सरकारों को चलाने वाली शक्ति तो मूलरूपेण यह नौकरशाही है। आज़ादी के पहले इन आई.सी.एस. (अब आई.ए.एस.) अफसरों के संबंध में हमारे नेताओं के विचार कुछ और थे। उपन्यास की भूमिका में लेखक ने इसका ज़िक्र करते हुए लिखा है — " शायद मौलाना मोहमद अली ने यह कहा था कि न तो आई. सी. एस. इण्डियन है, न सिविल है, न सर्विस है। नेहरू ने भी अपनी पुस्तक

" डीसकवरी आफ इण्डिया" में यह कहा था — " ये वे लोग हैं, जो अपने ही हितों को भारतीय हित मानते हैं । पहले यह सेवा किसी और रूप में थी, बादको इसे इण्डियन सिविल सर्विस का रूप मिला, जिसे संसार का सबसे स्वार्थी कर्मचारी संघ बताया गया है । ऐसा और किसीने नहीं — एक अंग्रेज़ लेखक ने कहा है । ये लोग भारत को चलाते थे और ये ही भारत थे । ये यह मानकर चलते थे कि जो कुछ भी उनके लिए हानिकारक है, वह सारे भारत के लिए हानिकारक है । " 27

परंतु बाद में ये ही नेहरू नौकरशाहों पर सर्वाधिक रूप से अवलंबित रहे । भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास "प्रश्न और मरीचिका " में ऐसे ही एक आई.सी.एस. अधिकारी जयराज उपाध्याय का प्रारंभ में चित्रण लेखक ने इन शब्दों में किया है — " श्री जयराज उपाध्याय ! ब्रिटीश सरकार के विश्वस्त और प्रियपात्र अफसर । हिन्दुस्तान की गरीब और पददलित जनता ने जयराज उपाध्याय से हमेशा घृणा की है । स्वभाव से कुछ क्रूर और निर्दय, लेकिन बेतरह शिष्ट और सौम्य दिखने वाले आदमी । ऊपर से नीचे तक और बाहर से भीतर तक अंग्रेजीयत । कीमती से क़ीमती सूट पहनते हैं, बढ़िया से बढ़िया शराब पीते हैं, और सूक्ष्म से सूक्ष्म बात उनकी पकड़ में है । कुलीन ब्राह्मण वंश का आभिजात्य, गौर वर्ण और पौरुष की कठोरता से भरी सुंदरता । छरहरा और लंबा बदन । परंपरागत बौद्धिकता, वेदांत की निस्पृहता ~~जयराज उपाध्याय में अ~~ — जयराज उपाध्याय में असीम साहस और आत्मविश्वास है । " 28 और इसी मिस्टर उपाध्याय को आज़ादी के बाद कहा जा रहा था — " मिस्टर उपाध्याय ! हमें देश का निर्माण करना है । यह हमारा सौभाग्य है कि हमें देवता-स्वरूप पंडित जवाहरलाल नेहरू का शासन मिला है — पंडित जवाहरलाल नेहरू महात्मा गांधी के मानस-पुत्र हैं । महात्मा गांधी ने जिस साधना और तपस्या का मार्ग दिखलाया है उस पर चलकर हम विश्व के अन्य राष्ट्रों का नेतृत्व प्राप्त कर सकते हैं । इस ओर मैं आप अधिकारियों के सक्रिय सहयोग की अपेक्षा करता हूँ । " 29

और उतनी ही गंभीरता से एक समय का अंग्रेज़ सरकार का परम वफादार जयराज उपाध्याय प्रत्युत्तर में कहता है — " आपका आदेश शिरोधार्य है शर्माजी । आप जैसे बलिदानी और त्यागी आदमियों के हाथ में शासन की बागडोर आ गयी है — यह देश के अहोभाग्य है । देश का कल्याण होना निश्चित है ।

मैं आपको यकीन दिलाता हूं कि हम भारतीय सिविल सर्विस वालों का पूरा सहयोग आपको मिलेगा । क्यों मिस्टर नायडु ? मैं ठीक कहता हूं न ! दिल्ली सचिवालय में सिविल सर्विस वाले जो भारतीय हैं उनकी मिटिंग आपने किस दिन बुलायी है ? " [30]

उक्त उदाहरणों से यह भलीभांति सिद्ध होता है कि देश की प्रशासनिक सत्ता कैसे लोगों के हाथों में खिसक रही थी । कांग्रेस तथा अन्य पार्टियों में उस समय बहुत से आदर्शवादी वकील, अध्यापक, बुद्धिजीवी थे, जिनका सत्ता की राजनीति से कोई संबंध नहीं था । यदि स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् ऐसे लोगों को कुछ महीनों की ट्रेनिंग देकर प्रशासन में लिया जाता तो देश का सत्यानाश न होता । जो आई.सी.एस. आफिसर अंग्रेज सरकार की नाक के बाल थे और जिन्होंने देश के साथ गद्दारी की थी, वे ही बाद में कलक्टर से कमिश्नर बन गये । कांग्रेसी शासन के नैतिक पतन का एक कारण स्वराज्य के बाद की उनकी आई.सी.एस. भक्ति है । इस संबंध में मि० हरिश खरे के विचार द्रष्टव्य हैं — " द ब्यूरोक्रेटिक एलिट, इनक्लुडिंग द ज्युडिशियल कम्पोनेण्ट हेज बीन सफिसियण्टली ट्यूटोर्ड इन द एड्वाण्टेज आफ ए कोम्प्रोमाईज़ विथ पोलिटिकल लुंपेन्स . " [32]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि आज़ादी के बाद प्रशासन में एक तरफ जयराज उपाध्याय जैसे लोग हावी होते रहे, तो दूसरी तरफ राजनीति में वैद्यजी (राग दरबारी), फूलबाबू (बलचनमा), जैपालसिंह (अलग अलग वैतरणी), महिपसिंह (जल टूटता हुआ) जैसे लोग आते गए और रंगनाथ (राग दरबारी), विष्णुपद (प्रेम अपवित्र नदी), देवप्रकाश (सूखता हुआ तालाब), विपिन और देवनाथ (अलग अलग वैतरणी) जैसे पढ़े-लिखे शिक्षित युवक नौकरियों में तथा अन्य क्षेत्रों में अपना संरक्षण ढूंढते रहे ।

लोकतंत्र-विषयक नेहरूजी के निम्नांकित विचार आज की इस परिवर्तित स्थितियों में महज़ एक व्यंग्य बनकर रह गए हैं — " डेमोक्रसी एज़ आई अण्डरस्टेण्ड इट, मिन्स समथिंग मोर धेन ए सर्टेन फोर्म आफ गवर्नमेण्ट एण्ड ए बोडी आफ इगालिट्रियन लोज़. इट इज़ एसेन्शियली ए स्कीम आफ वेल्यूज़ एण्ड मोरल स्टाण्डर्स इन लाईफ. वेधर यू आर डेमोक्रेटिक आर नोट डिपेण्ड्स ओन हाउ यू एक्ट एण्ड थिंक एज़ एन इण्डिविज़ियुल ओर एज़ ए ग्रुप डेमोक्रसी

डिमाण्ड्स डीसीप्लीन, टोलरंस एण्ड म्यूच्युअल रिगाईस. फ्रिडम डिमाण्ड्स रीसपेक्ट फोर द फ्रिडम आफ अदर्स अदर्स . इन ए डेमोक्रसी चेंजिस आर मेड बाय म्यूच्युअल डिसकं डिशकसंस एण्ड परस्युएशन एण्ड नोट बाय वायोलेण्ट मिन्स. डैमोक्रसी , इट मीन एनीथिंग मिन्स इक्वालिटीएण्ड नोट मियरली द इक्वालिटी आफ पलेटिकल पजेजिंग ए वोट , बट इकोनोमिक एण्ड सोसियल इक्वालिटी. " [33]

और इधर स्वतंत्रता के उपरान्त "राग दरबारी" के वैधजी जैसे नेता गांव में डंडे के जोर पर चुनाव करा लेते हैं , और कोई इनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता । छोटू पहलवान और बद्री पहलवान जैसे लोग गांव में छूटे सांड की तरह डोलते रहते हैं ।[34] पंचानन जैसा महाचोर और छटा हुआ बदमाश बाबा मस्तानंद बनकर चुनाव-प्रचार में जनमत पर छा जाता है और विष्णुपद जैसे शिक्षित व प्रामाणिक व्यक्ति को अनेक शहरों में अदालत की खाक छाननी पड़ती है ।[35] एक समय के नेहरू के विश्वसनीय ऐसे श्री शिवलोचन जैसे तपोपूत कांग्रेसी हारकर अंधकार में विलुप्त हो जाते हैं और उनके स्थान पर रकमु= रामकुमार गाबड़िया जैसे व्यापारी के साथ पैसों के लिए सोने वाली रूथा आण्टी जैसी औरतें चुनाव जीत जाती हैं ।[36] राजनीतिक क्षेत्र की इस भ्रष्टता ने जीवन के तमाम क्षेत्रों को लील लिया है ।

मोहभंग की स्थिति : स्वातंत्र्योत्तर मोहभंग की छवि को राष्ट्रीय-धारा के कवि स्व० रामधारीसिंह दिनकर की " अटका कहां स्वराज? " तथा स्व० माखनलाल चतुर्वेदी की "उनकी यादों के तरू,तृण-पल्लव , लो अब तो हम छोड़ चले ; कसमें रावी के तट खायीं , यमुना के तट पर तोड़ चले । " जैसी कविताओं में देखा जा सकता है । इस राजनीतिक भ्रष्टता से उत्पन्न विषमता, विसंवादिता, विद्रूपता एवं विकृतता के कारण ही इधर कथा, उपन्यास , निबंधों में व्यंग्यात्मक तेवर बढ़ रहे हैं । स्वतंत्रता के पूर्व यह सोचा -समझा जाता था कि हमारी सारी समस्याओं के मूल में हमारी पराधीनता है , जिसके दूर होते ही ये समस्याएं भी दूर हो जायेंगी । परन्तु आज़ादी के अनेक वर्षों बाद भी "यथास्थिति" बनी रही , जिनको रक्षक समझा जाता था वे ही भक्षं= भक्षक होने लगे , तब सिवाय मोहभंग के और क्या हो सकता है ?

" जो पहले होता रहा , अब भी वो ही हाल ।

आखिर चिड़िया क्या करे , डाल बने सब जाल ।।"[37]

डा0 राही मासूम रज़ा के उपन्यास "टोपी शुक्ला" का टोपी शुक्ला ऐसे हिन्दुस्तानी नागरिक का प्रतीक है जो अपने को विशुद्ध भारतीय समझता है । वह ऐसे स्वजनों से घृणा करता है , जो अपनी बहू-बेटियों से वेश्यावृत्ति कराते हुए भी अपना ब्राह्मणपना बचाकर रखते हैं , पर स्वयं उससे इसलिए घृणा करते हैं कि उसके कई मित्र मुस्लिम हैं और वह उनका समर्थक व हामी हैं है । अंत में टोपी शुक्ला ऐसे ही लोगों के साथ समझौता नहीं कर सकने के कारण आत्महत्या करता है । इस उपन्यास की भूमिका में लेखक ने अपनी इस मर्मान्तक पीड़ा को उकेरते हुए लिखा है — " हम लोग कहीं-न-कहीं , किसी-न-किसी अवसर पर "कोम्प्रोमाइज़" कर लेते हैं । और इसलिए हम लोग जी रहे हैं । टोपी कोई देवता या पैगम्बर नहीं था । किन्तु उसने कोम्प्रोमाइज़ नहीं किया । और इसलिए आत्महत्या कर ली । ....` आधा गांव ` में बेशुमार गालियां थीं । मौलाना ` टोपी शुक्ला ` में एक भी गाली नहीं है । .... परन्तु शायद यह पूरा उपन्यास एक गन्दी गाली है । और मैं यह गाली डंड= डंके की चोट बक रहा हूं । " [38]

डा0 शिवप्रसादसिंह द्वारा प्रणीत उपन्यास "अलग अलग वैतरणी" में उपन्यास के अंत तक आते-आते मोहभंग की स्थिति स्पष्ट हो जाती है , और कनिया और जग्गनमिसिर को छोड़कर उपन्यास के प्रायः सभी अच्छे पात्र एक-एक करके गांव छोड़ जाते हैं । इन पात्रों के द्वारा गांव को त्यागने की कसक पाठक को बुरी तरह से झकझोर देती है । जग्गनमिसिर के ये शब्द बार-बार हमारे कानों में गूंजते रहते हैं — " आप जा रहे हैं विपिन बाबू , जाइये । कोई इसके लिए आपको दोष नहीं देगा । सभी जाते हैं । हमारे गांवों से आजकल एक तरफा रास्ता खुला है । निर्यात । सिर्फ निर्यात । जो भी अच्छा है , काम का है , वह यहां से चला जाता है । अच्छा अनाज, दूध, घी, सब्जी जाती हैं । अच्छे मोटे-ताजे जानवर , गाय, बैल, भेड़ें, बकरे जाते हैं । ~~हट्ठे-कट्ठे~~ हट्टे-कट्टे मजबूत आदमी जिनके बदन में ताकत है , देह में बल है , खींच लिए जाते हैं , पल्टन में, पुलिस में, मलेटरी में , मिल में । फिर वैसे लोग जिनके पास अकल है, पढ़े-लिखे हैं , यहां कैसे रह जायेंगे ? वे जायेंगे ही । जाना ही होगा । जाते

तो लोग पहले भी थे , मगर अक्सर वे जिन्हें काम नहीं मिलता था या जो जमींदार के जोरो-जुल्म से आजिज आ गए थे । पर अब तो एक नये तरह का अनत गौन हो रहा है । यहां रहते वे हैं जो यहां रहना नहीं चाहते , पर कहीं जा नहीं पाते । यहां से अब जाते वे हैं जो यहां रहना चाहते हैं ; पर रह नहीं पाते । " [39] यहां डा० पारूकांत देसाई के इस मत से सहमत हुआ जा सकता है कि " अलग अलग वैतरणी" की यह समस्या कुछ हद तक हमारे देश की समस्या भी है । हमारे देश का बुद्धिधन , हमारी सरस्वती , शनैः शनैः विदेश जा रही है । डा० चन्द्रशेखर, डा० नार्लीकर, डा० खुराना आदि प्रसिद्ध वैज्ञानिक तथा प्रसिद्ध सितारवादक रविशंकर इसके ज्वलंत उदाहरण हैं । दूसरी ओर गांवों की प्रतिभा शहरों की ओर बढ़ती है , जिसमें गांव टूट रहे हैं । मूल्य टूट रहे हैं । नहीं टूटता है केवल अंधकार — जड़ता का अंधकार । बिसू द्वारा गाया गया रहीम का यह दोहा हमारे मन-मस्तिष्क पर बार-बार पड़घाता है —

"सर सूखे पंछी उड़े , औरनि सरहिं समाहिं ।
दीन मीन बिनु पंख के , कहु रहीम कहं जाहिं ।।

जग्गनमिसिर और कनिया ऐसे ही 'दीन-मीन' हैं जो गांव की नियति से जुड़े हुए हैं । .... इस उपन्यास में लेखक गांवों के टूटते-बदलते मूल्यों की कराह को संवेदनशील पाठकों तक संक्रमित कर रहा है । " [40]

"राग दरबारी" उपन्यास में तो मोहभंग की स्थिति अपनी चरम-सीमा को छूती हुई दृष्टिगत होती है । यही कारण है कि समूचा उपन्यास अनेक व्यंग्य-वचनों एवं वक्र-भंगिमाओं से अटा पड़ा है । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :—

/1/ " ड्राईवर साहब , तुम्हारा गियर तो बिलकुल अपने देश की हुकूमत जैसा है । " [41]

/2/ " जिस किसी की दुम उठाकर देखो , मादा ही नज़र आता है । " [42]

/3/ " नैतिकता , समझ लो कि यही चौकी है । एक कोने में पड़ी है । सभा-सोसायटी के वक्त इस पर चढ़कर लेक्चर फटकार दिया जाता है । यह उसीके लिए है । " [43]

/4/ " वह [रंगनाथ] जानता था कि हमारा देश भुनभुनाने वालों का देश है । दफ्तरों और दूकानों में , कल-कारखानों में , पार्कों और होटलों में , अखबारों में , कहानियों और अकहानियों में , चारों तरफ लोग भुनभुना रहे

हैं । यही हमारी युग-चेतना है और इसे वह अच्छी तरह से जानता था । यहां गांव में भी , उसने यही भुनभुनाहट सुनी थी । किसान अमला-अहलकारों के खिलाफ़ भुनभुनाते थे , अहलकार अपने को जनता से अलग करके पहले जनता के खिलाफ भुनभुनाते थे और फिर दूसरी सांस में अपने को सरकार से अलग करके सरकार के खिलाफ़ भुनभुनाते थे । लगभग सभी किसी-न-किसी तकलीफ़ में थे और कोई भी तकलीफ़ की जड़ में नहीं जाता था । तकलीफ़ का जो भी ~~कारण~~ तात्कालिक कारण हाथ लगे , उसे पकड़कर भुनभुनाना शुरू कर देता था । "[44]

/5/ " समाजवादी समाज की स्थापना के सिलसिले में हमने पहले तो घोड़े और मनुष्य के बीच भेदभाव को मिटाया है । "[45]

/6/ " अपने भ्रष्टाचार की शिकायत पर कमीशन बैठाले जाने की सूचना पाकर किसी बड़े नेता की तरह उन्होंने यह वक्तव्य नहीं दिया कि पहले भ्रष्टाचार की एक सर्वमान्य परिभाषा निश्चित होनी चाहिए । अपनी रचनाओं की खराब आलोचना पढ़कर टेक्स्ट-बुक कमिटी की कृपा से लखपति बनने वाले किसी साहित्यकार की तरह वे अवज्ञा की हंसी नहीं हंसे । "[46]

/7/ " सभी मशीनें बिगड़ी पड़ी हैं । सब जगह कोई-न-कोई गड़बड़ी है । जान-पहचान के सभी लोग चोट्टे हैं । सड़कों पर ~~सिर्फ कुत्ते~~ सिर्फ कुत्ते , बिल्लियाँ और सूअर घूमते हैं । हवा सिर्फ धूल उड़ाने के लिए चलती है । आसमान का कोई रंग नहीं , उसका नीलापन फ़रेब है । बेवकूफ़ लोग बेवकूफ़ बनाने के लिए बेवकूफ़ों की मदद से बेवकूफ़ों के खिलाफ़ बेवकूफ़ी करते हैं । घबराने की , जल्दबाजी में , आत्महत्या करने की जरूरत नहीं । बेईमान और बेईमानी सब ओर से सुरक्षित हैं । आज का दिन अड़तालीस घण्टे का है । "[47]

/8/ " योग्य आदमियों की कमी है । इसलिए योग्य आदमी को किसी चीज़ की कमी नहीं रहती । "[48]

/9/ " लड़के इस घटना से ≬ मास्टरों के गाली-गलौच से ≬ ज्यादा प्रभावित नहीं हुए । चुपचाप इम्तहान देते रहे और नियमपूर्वक नकल करते रहे । "[49]

ऐसे तो अनेक उदाहरण इस उपन्यास में मिल सकते हैं । 424 पृष्ठों का यह उपन्यास अपने आद्यन्त व्यंग्यात्मक शिल्प से अनूठा बन पड़ा है । "अलग अलग वैतरणी " , "जल टूटता हुआ " प्रभृति उपन्यासों में गांव का हरामीपन थोड़ा अधपका-सा मिलता है , जबकि इस उपन्यास में शिवपालगंज अपने हरामीपन

में पूरी तरह से पक गया है । और शिवपालगंज तो प्रतीक है समूचे भारत का । अतः कह सकते हैं कि स्वातंत्र्योत्तर मोहभंग की स्थिति के व्यंग्यात्मक चित्र का नाम है — " राग दरबारी " ।

डा0 रामदरश मिश्र के उपन्यास "जल टूटता हुआ" में इस मोह-भंग की स्थिति को उकेरने के लिए लेखक ने " बांध को तोड़कर फैलते बाढ़ के पानी " का प्रतीक लिया है । बाढ़ का पानी बांध को जगह-जगह तोड़कर उसमें शिगाफ़ बना रहा है । ठीक उसी तरह स्वाधीनता के उपरान्त शोषण और गरीबी को बांधने का कोई प्रामाणिक प्रयत्न नहीं हुआ । कुछ कार्य तात्कालिक लाभ-हानि की दृष्टि से हुए । परंतु महीपसिंह, दीनदयाल और दौलतसिंह जैसे नेता-लोग हमारे सपनों को निगल गये हैं और आज़ादी के बाद भी आम आदमी की स्थिति सुग्गन , जग्गू , कुंजू , बदमी , महावीर आदि से बेहतर नहीं है । इसलिए उपन्यासकार का यह अहसास बहुत प्रामाणिक लगता है — " गांव टूट रहा है , मूल्य टूट रहे हैं , सत्य टूट रहा है , कोई किसी का नहीं , सब अकेले हैं , एक-दूसरे के तमाशाई , वही क्यों सबका ठेका लिए फिरे ? " [50]

डा0 मिश्र के ही एक अन्य उपन्यास " सूखता हुआ तालाब" में भी " सूखता हुआ तालाब" हमारे मूल्यहीनता और गरीबी से सूख रहे गांवों का प्रतीक बनकर आया है । "जल टूटता हुआ " के सतीश की भांति देवप्रकाश यहां महसूस करते हैं कि गांव अब शिवलाल, शामदेव, मास्टर धर्मेन्द्र , बनारसी, कामरेड मोतीलाल जैसे बदमाश और हिजड़ेनुमा नेताओं का अड्डा बन गया है । शंकर और जैराम जैसे नैतिक मूल्यों में विश्वास करने वाले कुछ लोग हैं , परन्तु उनकी आवाज़ नक्कारखाने में तूती के समान हैं । जैराम के अग्रज का स्वर्गवास होने पर दिए गए ब्रह्मभोज में भाभी की जिद एवं गांववालों के दबाव के कारण जैराम को अपने खास मित्र देवप्रकाश के परिवार का सामाजिक बहिष्कार करना पड़ता है । यह एक तरह से नैतिक मूल्यों पर गांव की गन्दी पार्टी-पोलिटिक्स की विजय है । इससे देवप्रकाश बुरी तरह से टूट जाते हैं — " क्या है मानवता ? क्या है मूल्य ? कुछ नहीं बचा है । बचा है केवल सुख-सुविधा परक समझौता ? तब तो कहीं कुछ भी विश्वसनीय नहीं , कहीं कुछ भी अटूट नहीं , कहीं कुछ भी मूल्य नहीं , आत्मीय नहीं । " [51]

जंगलतंत्रम् : हमारी राजनीति भ्रष्टता की उन सीमाओं को छू रही है, जिसके कारण हमारा लोकतंत्र "जंगलतंत्र" में बदल गया है। जंगल में "माईट इज़ राईट" का नियम चलता है, और हमारे यहां भी जो शक्तिवान है, जो संपन्न है, जो सर्वसत्ताधीश हैं, उन्हीं का राज्य है। प्रजातंत्र तो उनके हाथों का खिलौना-मात्र बनकर रह गया है। पांच साल के बाद एक नयी चादर उस पर डाल दी जाती है, ताकि उसकी दिव्यता बनी रहे। तभी तो "राग दरबारी" के वैद्यजी कहते हैं — "देखने में चाहे कितना बांगडू लगे, पर प्रजातंत्र भला आदमी है और अपना आदमी है, और उसकी मदद करनी ही चाहिए। उसे कम-से-कम एक नया कपड़ा दे दिया जाय ताकि पांच भले आदमियों में वह बैठने लायक हो जाय।" [52]

आज़ादी के उपरान्त हमारे देश की राजनीति में एक नया घिनौना गन्दा, गर्हित परिमाण जुड़ा — वह है गुण्डाइज़्म। पहले कुछ गुण्डे राजनीतिज्ञों के संरक्षण में पलते थे, ताकि वक्त-बेवक्त काम आ सके, परन्तु इन गुण्डों ने जब देखा कि किसी मंत्री, विधायक, सांसद या कार्पोरेटर के एक फोन से यदि उनको छोड़ दिया जाता है, तो फिर वैसी सत्ता स्वयं क्यों न हथिया ली जाय? आज देश की लोकतांत्रिक संस्थाओं में बीस-पचीस प्रतिशत लोग इस बिरादरी के पाए जाते हैं। इनके अतिरिक्त वैद्यजी जैसे सफेदपोश गुण्डे तो हैं ही। मन्नू भण्डारी के उपन्यास "महाभोज" के सरोहा गांव का जोरावर ऐसा ही एक गुण्डा है। प्रदेश के मुख्यमंत्री दासाहब का वह खास आदमी है। सरपंच का भतीजा है। पूरा गांव उसके भय व आतंक से थर-थर कांपता है। उपन्यास का एक पात्र बिन्दा ठीक ही कहता है — "लोगों के घर, ज़मीन और गाय-बैल ही रेहन नहीं रखे हुए हैं, जोरावर और सरपंच के यहां, उनकी आवाज़ और जबान तक बन्धक रखी हुई है।" [53]

स्वतंत्रता के बाद हमारे लोकतंत्र की जो अवदशा हुई है, उसका चित्रण नवोदित व्यंग्यकार श्रवणकुमार गोस्वामी के फैण्टसीनुमा उपन्यास "जंगल-तंत्रम्" में मिलता है। सिंह, मोर, नाग और चूहा — ये चार इस "जंगलतंत्रम्" के मुख्य घटक हैं जो क्रमशः राजनेता, प्रशासक, पूंजीपति और आम आदमी के प्रतीक रूप में आए हैं, जिनके माध्यम से आज़ादी के विगत पैंतीस वर्षों की विसंगत और

HANSA MEHTA LIBRARY
M.S. University Baroda

विडंबनापूर्ण राजनीतिक-सामाजिक स्थितियों की नग्न वास्तविकताओं को उघाड़ा गया है । आम वर्ग या सामान्य जनता के शोषक उपर्युक्त तीन वर्गों के अतिरिक्त बुद्धिजीवी वर्ग की निष्क्रियता , निर्वीर्यता , दोगलापन और दुभाषियागिरी की भी लेखक ने कड़ी भर्त्सना की है । अपने निजी स्वार्थों के लिए नित-नवीन पैंतरे-बाजी दिखाने वाले इस वर्ग के लिए लेखक ने गिरगिट का प्रतीक लिया है । वह अपनी आवश्यकता एवं स्वार्थ के अनुसार राजनेता अर्थात् सिंह और पूंजीपति अर्थात् नाग उभय का पक्ष ही नहीं लेता , वरन् आम जनता अर्थात् चूहा के प्रति अपनी मौखिक सहानुभूति का प्रदर्शन करना भी नहीं चूकता । एक स्थान पर वह कहता है — " तुम लोग समझते हो कि सिंह हमारा नेता है — हमारे लिए "मंगलवाद " {समाजवाद} ला रहा है । क्या सचमुच इस "जंगलतंत्र"में हम सब समान हैं ? आखिर तुम लोग यह क्यों नहीं समझते कि यह सबकुछ नाटक है और नाटक के सिवा कुछ भी नहीं ? अगर हम सब समान हैं तो हमारे बच्चे साधारण स्कूलों में क्यों जाते हैं , जब कि सिंह, मोर और नाग के बच्चे खास तरह के स्कूलों में जाते हैं ? अगर यह जंगल में रहने वाले हम सब जीवों का राज्य है , तो राम-राज की भाषा हमारी अपनी भाषा क्यों नहीं है ? यहां के सारे काम-काज मोर-भाषा {अंग्रेजी} में ही क्यों किए जाते हैं ? तुम लोग यह समझने की कोशिश ही नहीं करते कि हमारे साथ कितना बड़ा फरेब किया जा रहा है ? सच्ची बात तो यह है कि हम पहले केवल सिंह के गुलाम थे , लेकिन अब हम सिंह , मोर और नाग तीनों के गुलाम हैं । " [54]

परन्तु हमारे इस लोकतंत्र में — जंगलतंत्र में — इन बुद्धिजीवियों की क्रान्ति की बातें कितनी छद्मपूर्ण हैं , उसका पर्दाफाश "गिलहरी" {एक अति सामान्य स्त्री } करती है — " तू नाग और सिंह दोनों का दलाल है । तू रंग बदल-बदल कर दोनों से धन लेता है और मतदाताओं को बहकाता है । सच-सच बता , तू सिंह और नाग दोनों के लिए झूठे-झूठे प्रचार-पत्र लिख रहा है या नहीं ? मैं सब जानती हूं । सिंहने तुम्हें लोभ दिया है कि अगर वह जीत गया तो वह तुझे विद्याधिपति बना देगा । नाग ने भी तुझसे कह रखा है कि अगर वह जीत गया , तो तुझे अपनी कंपनी का डायरेक्टर बना देगा ।" [55]

अतः यह स्पष्टतया देखा जा सकता है कि अब शोषण का स्वरूप प्रच्छन्न एवं चौमुखी होता जा रहा है । सिंह अर्थात् राजनेता के अति-

रिक्त अब प्रशासक, पूंजीपति तथा बुद्धिजीवी भी प्रकारान्तर से प्रजा को लूट रहे हैं । तभी तो मनोहरश्याम जोशी के उपन्यास " नेताजी कहिन" के कक्काजी कहते हैं — " डैमोक्रसी में क्या हय, कोसिस करने से इन्सान कुछ भी बन सकता हय । सामन्तसाही नहीं है-सं-सुसरके हय सुसरी कि अक्- अयुयासी सामन्ते कर सकेगा । अउर कौनो नाहीं ।" [56] तात्पर्य यह कि इस "जंगलतंत्र" में — लोकतंत्र में — जो भी जोरावर है, वह कमजोर को मार-फाड़ खा जाएगा और कहने-सुनने वाला कोई न होगा । यथा —

" मैं दंगई साफ कर जाऊंगा, क्या कर लोगे ?
मैं नंगई साफ कर जाऊंगा, क्या कर लोगे ? " [57]

या

" हम करें सो कायदा, हम करें सो न्याय ।
नीति-फीति कर रही, हमको टाटा बाय ।। " [58]

सरकारी योजनाओं से प्रभु-वर्ग की हित-साधना : नेता एवं अधिकारी वर्ग के धूर्तता-पूर्ण गठबंधन के कारण राजनीतिक भ्रष्टता की अमरबेल फैलती-फूलती जा रही है, जिसके कारण सरकार की तमाम कल्याण-योजनाओं का लाभ प्रायः प्रभु-वर्ग को ही मिल रहा है । हमारे यहां यह राजनीतिक भ्रष्टाचार किस हद तक पहुंच गया है, उसका व्यंग्यात्मक आलेखन एक फैन्टसीनुमा कहानी मु में हुआ है, जिसे मैंने कहीं सुना था । कहानी का शीर्षक है — " कुएं की चोरी " । एक अदालत में बड़ा विचित्र "केस" आता है — " कुएं की चोरी का " । फरियादी अदालत में तमाम प्रमाण उपस्थित करता है जिसमें कुऐ की खुदाई से लेकर उस पर मशीन लगने तक की ग्राण्ट-लोन एवं कार्यवाहियों के तमाम कागज-पत्र मौजूद थे । कहने की आवश्यकता नहीं कि ये सब उसने संबंधित अधिकारियों को रिश्वत देकर किया होगा । अंत में रिश्वत की दशगुना रकम लेकर वह अपना मुकदमा वापिस खींच लेता है । तब एक व्यक्ति के कहने पर कि अब तो इन पैसों से तुम कुआं खुदवा सकते हो, वह जवाब देता है — " मेरे पास जमीन ही कहां है जो मैं कुआं खुदवाऊंगा ? " तात्पर्य यह कि ऐसी अनेकों योजनाएं कागजों पर बनती हैं और कागजों पर ही चलती हैं ।

"राग दरबारी" उपन्यास के कालिकाप्रसादजी का पेशा ही

ग्राण्ट और कर्ज खाना था । वे सरकारी पैसे के द्वारा सरकारी पैसे के लिए जीते थे । इस पेशे में उनके तीन सहायक थे — क्षेत्रीय एम. एल. ए. , खद्दर की पोशाक और उनका यह वाक्य " अभी तो वसूली की बात ही न कीजिए । आपको कारवाई रोकने में दिक्कत न हो , इसलिए मैंने ऊपर भी दरख्वास्त लगा दी है ।" [59] कालिकाप्रसादजी का सारा कर्मयोग सरकारी स्कीमों की फिलासफी पर ही टिका हुआ है । मुर्गी-पालन के लिए ग्राण्ट मिलने का नियम बना तो उन्होंने मुर्गियां पालने का ऐलान कर दिया । एक दिन उन्होंने कहा कि जाति-पांति बिलकुल बेकार की चीज़ है और हम बांभन और चमार एक हैं । यह उन्होंने इस-लिए कहा था कि चमड़ा कमाने की ~~मुफ्त लेकर अपने चमड़े को ज्यादा चिकना बनाने में~~ ग्राण्ट मिलने वाली थी । चमार देखते ही रह गये और उन्होंने चमड़ा कमाने की ग्राण्ट लेकर अपने चमड़े को ज्यादा चिकना बनाने में खर्च भी कर डाली । " खाद के गड्ढे को पक्का करने के लिए , घर में बिना धुएं का चूल्हा लगवाने के लिए , नये ढंग का संडास बनवाने के लिए — कालिकाप्रसाद ने ये सब ग्राण्टें लीं और इनके एवज़ में कारगुजारी की जैसी रिपोर्ट उनसे मांगी गई वैसी रिपोर्ट उन्होंने बिना किसी हिचक के लिखकर दे दी । " [60]

इस क्षेत्र में उनका ज्ञान बड़ा विशद था । उन्हें हर बात की जानकारी रहती थी । योजना-आयोग द्वारा ग्राण्ट या कर्ज देने वाली किसी स्कीम के तैयार होते ही उसकी जानकारी उन्हें मिल जाती थी । अपने हिसाब से वे गांव के सबसे ज्यादा आधुनिक आदमी थे , क्योंकि उनका यह पेशा बिलकुल ही आधुनिक काल की उपज था । छंगामल इण्टरमीजिएट कोलेज के प्रिंसिपल महोदय भी इस क्षेत्र के विशेषज्ञ थे । उनके सिर्फ दो ही काम थे — येण केण प्रकारेण अपनी कुर्सी को सलामत रखना और विभिन्न स्कीमें बनाकर कोलेज के लिए — अर्थात् वैद्यजी के लिए — सरकार से अधिक से अधिक अनुदान की रकम ~~ऐंठने~~ ऐंठना । शिवपालगंज में सरकारी पैसा कैसे-कैसे किन-किन तरीकों से आता है उनका एक व्यंग्यात्मक चित्रण द्रष्टव्य है — " पहले जिस मैदान का जिक्र आया है , [61] उसका एक भाग ऐसा भी था जिसकी आहुति भूदान-यज्ञ में नहीं हुई थी । वह उबड़-खाबड़ जमीन थी और जो वैसी न थी वह ऊसर थी और लेखपाल के कागजों में वह सारी जमीन बाग के रूप में दर्ज थी । अपने इस बहु-

मुखी व्यक्कित्व के कारण वह जमीन पिछले कई सालों से कई प्रकार से इस्तेमाल हो रही थी । हर साल गांव में वन-महोत्सव का जलसा होता था , जिसका अर्थ जंगल में पिकनिक करना नहीं बल्कि बंजर में पेड़ लगाना है और तब कभी-कभी-कभी तहसीलदार साहब , और लाजमी तौर से बी.डी.ओ. साहब , गाजे-बाजे के साथ उस पर पेड़ लगाने जाते थे । इस जमीन को कालिज की संपत्ति बनाकर इण्टरमीजिएट में कवि-कृषि-विज्ञान की कक्षाएं खोली गयीं थीं। इसीको अपना खेलकूद का मैदान बताकर गांव के नवयुवक , युवक-मंगल-दल के नाम पर , हर साल खेलकूद संबंधी ग्राण्ट ले आया करते थे ।" 62

ये सरकारी पैसे खाकर डकार न लेने वाले लोग कैसे होते हैं उसका आदर्श प्रतिमान हैं कालिकाप्रसाद । उनके चरित्र का दिग्दर्शन लेखक ने सनीचर के शब्दों में इस प्रकार करवाया है — " ` गुरु महाराज , ये जिसका नाम कालिकाप्रसाद है , यह भी एक हरामी है । ` सनीचर ने यह बात इस तरह कही जैसे कालिकाप्रसाद को पद्मश्री की उपाधि दी जा रही हो ," ह हाकिमों से काम निकालने के लिए आदमी की शक्ल बिलकुल इसी की जैसी होनी चाहिए । जब जरूरत होती है तो यह बड़े-बड़े लच्छन झाड़ता है, कान-पूंछ फटकार कर मुंह से बारूद-जैसी निकालने लगता है । एक-एक सांस में पांच-पांच सात-सात एम.ले. लोगों के नाम बोल जाता है और हाकिम बेचारे का मुंह खुला का खुला रह जाता है । उस समय कोई कालिकाप्रसाद की लगाम पर हाथ लगा दे तो जानूं । ... और महराज , वही कालिकाप्रसाद अगर किसी अकड़ू हाकिम के सामने पड़ जाय , तो पहले से ही केंचुए की तरह टेढ़ा-मेढ़ा होने लगता है । क्या बतावें महराज , आंख नीची करके ऐसा भूदानी नमस्कार करता है कि हाकिम सोचता ही रह जाय कि यह कौन है — बिकास भाई कि प्रकास भाई । अक्लि से इतना हुशियार है , पर भुग्गा जैसा बनकर खड़ा हो जाता है और तब क्या मजाल कि कोई इसे ताड़ ले । बड़ा-से-बड़ा-हाकिम काबिल आदमी इसको बेवकूफ मानकर आगे निकल जाता है और तब यह पीछे से झपटकर हमला करता है । .... और गुरु महराज , इसके तिकड़म का तो कहना ही क्या ? एह हे ह ! सरकारी दफ्तर में चपरासी से लेकर बाबू तक और बाबू से लेकर हाकिम तक — सभी जगह यह घुसा है । घुन है पूरा घुन । जिस मिसिल में कहो , उसी के बीच से घुसकर बाहर निकल आवेगा ।"63

इसी "राग दरबारी" उपन्यास में एक प्रसंग आया है । वैद्यजी अपने कोआपरेटिव यूनियन में गबन करवाते हैं और फिर सरकार से माँग करते हैं कि उस गबन की रकम की आपूर्ति के लिए उतनी रकम सरकार की तरफ से कोआपरेटिव यूनियन को दे दी जाय । इस संबंध में आए हुए अफसर को वैद्यजी समझाते हैं कि अगर सरकार ऐसा नहीं करती तो उससे यही निष्कर्ष निकलेगा कि सरकारी अधिकारी सहकारिता के आंदोलन को आगे नहीं बढ़ाना चाहते ।[64]

वैद्यजी के इस प्रस्ताव पर अफसर जब "किन्तु-परन्तु" की भाषा का इस्तेमाल करता है, तब वैद्यजी बुरी तरह से बिगड़कर उस अफसर को फटकारते हुए कहते हैं — " आप लोग देश का उद्धार इसी प्रकार करेंगे ? यह "किन्तु", "परन्तु", "तथापि" — यह सब क्या है ? श्रीमन् , यह नपुंसकों की भाषा है । अकर्मण्य व्यक्ति इसी प्रकार अपने-आपको और देश को वंचित करते हैं । आपका निर्णय स्पष्ट होना चाहिए । किन्तु ! परन्तु ! थूः ! "[65] इसे कहते हैं चोरी ऊपर से सीनाजोरी ! तभी तो कहा गया है — " चंद चाऊ चटोरिये चंगा देश चलाय ! "

राजनीति में इमी व्यक्तियों का प्रवेश : राजनीतिक भ्रष्टता में एक नया आयाम इधर यह जुड़ा है कि अयोग्य , अशिक्षित या अर्धशिक्षित , अभ्रमिकित कमजोर लोग दूसरे लोगों के डमी रूप में धीरे-धीरे उभरकर आ रहे हैं । ऐसे लोग सिवाय उंगली उठाने के और कुछ नहीं करते । वस्तुतः इनकी आड़ में निहित स्वार्थ वाले लोग (वेस्टेड इण्टरेस्ट्स) अपना लक्ष्यवेध साधते रहते हैं । ऐसे जी-हुजूरी करने वाले लोग (लोयल यस मेन) कभी किसी बात में विरोध नहीं करते , अतः राजनीतिज्ञ लोग अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए ऐसे लोगों का उपयोग करते रहते हैं । हमारी स्व० प्रधामंत्री श्रीमती इन्दिर इन्दिरा गांधी कई बार ऐसे कमजोर लोगों को अपने मंत्री-मण्डल में लेती थीं और उनके कुछ समझदार या शक्तिवान होने पर उन्हें निकाल बाहर करती थीं । एक समय के केन्द्रीय मंत्री श्री उमाशंकर दीक्षित इसके अच्छे उदाहरण हैं । श्रीमती उमा वासुदेव ने " द फ्र टू फेसिस आफ इन्दिरा गांधी " नामक अपनी पुस्तक में उनके संबंध में लिखा है— " उमाशंकर दीक्षित वाज़ एन ओल्ड टाईम-भिनोर एसोसिएट आफ द नेहरूस

एण्ड वाज़ ब्रोट इंटु पोलिटिक्स एट ए नेशनल लेवल बाय इण्दिरा गांधी एज़ ए पार्ट आफ हर स्ट्रेटजी टु सराउण्ड हरसेल्फ विथ लोयल यस-मेन . द एक्मे= एक्मे आफ हिज़ केरियर वाज़ हिज अपोइनमेण्ट एज़ यूनियन होम मिनिस्टर इन 1973-75. वंस ही स्टार्टेड फिलींग थेट ही रीयली वाज़ ए मेन आफ सम कोन्सेक्वेन्स , शी पेक्ड हीम आफ्फ टु द शीपिंग एण्ड ट्रान्सपोर्ट मिनिस्टरी एण्ड थेन आन टु गुबरनेशनल इनसिग्नीफिकंश एज गवर्नर आफ कर्नाटक . ए लुंबरिंग ओल्ड मेन , ही डिपेण्डेड आन हीज़ डाटर -इन-लो टु एक्ट एज़ कोन्फिडेण्ट इन हीज़ इयर्स आफ पावर इन देल्ही. " 66

"अलग अलग वैतरणी" के जैपालसिंह सुरजूसिंह को गांव के सरपंच के रूप में नहीं देखना चाहते । वे इस पद पर अपने ही एक गुर्गे सुखदेवराम को बिठा देते हैं ताकि उसे तथा उसके द्वारा समूचे गांव को अपनी मुट्ठी में कर सके । लेखक के शब्दों में " उन्होंने अपनी ज़िन्दगी के ज्यादा दिन लोगों के झुके माथे और झुकी आंखों में देखकर बिताये थे । उन्हें नीच जात वालों को तने-सीधे देखने का ताव न था । "67

"राग दरबारी" का सनीचर वैद्यजी का एक "जी-हुज़ूरिया" ही है । वह हमेशा उनके दरबार में अण्डरवेयर पहने भांग घोंटता रहता है । वैद्यजी के इशारों पर उसे ग्रामसभा का सरपंच चुन लिया जाता है । सनीचर जैसे आदमी का सरपंच चुना जाना ही व्यंग्य की पराकाष्ठा है । एक स्थान पर वह वैद्यजी से कहता है -- " पर आपके दरबार में बैठते-बैठते कुछ हमें भी तीन-तेरह का इल्म हो गया है । कहावत है कि अखाड़े का ततमस्सा भी पहलवान हो जाता है , जैसे बद्री भैया के अखाड़े में छोटे पहलवान हो गये , वैसे ही कुछ विद्या हमें भी आ गयी है । " 68

चुनाव के हथकण्डे : चुनाव में थोड़ी-बहुत गड़बड़ी तो लगभग सभी देशों में पायी जाती है , परन्तु विश्व की सबसे बड़ी लोकशाही कही जाने वाली हमारी लोकशाही में भ्रष्टाचार अपनी चरम-सीमा को लांघ गया है । चुनाव में जातिवाद का आधार लेना तो एक सामान्य बात है , इसके अतिरिक्त "बूथ-कैप्चरिंग" , पैसा और बल-प्रयोग (मनी एण्ड मसल्स) , माफियावाद और गुंडाइज़म जैसी प्रवृत्तियां जोर पकड़ती जा रही हैं । अभी पिछले साल हरियाणा के माहेम मत-विस्तार

में जो कुछ हुआ वह लोकतंत्र की खुल्ली "मोकरी" है । हरियाणा तथा पंजाब के ग्रामीण तबकों में आज भी कुछ पिछड़ी जाति के लोग वोट देने नहीं जा सकते । बिहार के एक पिछड़ी जाति के मतदाता ने एक पत्रकार के साथ के साक्षात्कार में बताया था कि उसने आज तक कभी वोट नहीं दिया , बल्कि यहाँ तक कहा कि हमारे वोट तो बाबू लोग डाल देते हैं ।[69] यह हमारे चालीस साल के लोकतंत्र की परिपक्वता है कि उसे इस बात का मलाल तक नहीं है । अपने इस मताधिकार का उसके सम्मुख कोई मूल्य नहीं है ।

राजनीति कमीनापन और नंगई का पर्याय होती जा रही है । "राग दरबारी" के वैद्यजी तमंचे के बल पर कोलेज के मैनेजर का चुनाव जीत जाते हैं । इस पर रंगनाथ के यह कहने पर कि" तमंचे के जोर पर मैनेजरी मिल भी गयी तो क्या हुआ , मामा को ऐसा नहीं करना चाहिए , चारों तरफ उनकी बदनामी तो हो ही गयी ," रूप्पन बाबू अपनी लट्ठमार शैली में जवाब देते हैं — " देखो दादा , यह तो पोलिटिक्स है । इसमें बड़ा-बड़ा कमीनापन चलता है । यह तो कुछ भी नहीं हुआ । पिताजी जिस रास्ते में है उसमें इससे भी आगे कुछ करना पड़ता है । दुश्मन को जैसे भी हो चित करना चाहिए । यह चित न कर पाएंगे , तो खुद चित हो जाएंगे और फिर बैठे चूरन की पुड़िया बांधा करेंगे और कोई टका को भी न पूछेगा । " 70

इसी उपन्यास में चुनाव के हथकण्डों का बड़ा ही व्यंग्यात्मक चित्रण मिलता है । लेखक के अनुसार चुनाव जीतने की तीन तरकीबें हैं : एक रामनगरवाली , दूसरी नेवादा वाली और तीसरी महिपालपुर वाली । "71

रामनगर वाली "थ्योरी" का अन्वेषण रामनगर के रिपुदमनसिंह तथा शत्रुघ्नसिंह के ग्राम-सभा के चुनाव से हुआ । दोनों एक ही जाति के थे, अतः जातिगत आधार कमजोर पड़ गया । रिपुदमनसिंह के छोटे भाई सर्वदमनसिंह वैसे तो वकालत पास थे , पर वकालत छोड़कर स्थानीय राजनीति में कूद पड़े थे । उनके पास दस गैस-बत्तियां थीं जो शादियों के मौसम में किराये पर चलती थीं । साथ ही उनके पास दो बन्दूकें थीं , जो डकैतियों के मौसम में किराये पर चलती थीं । कुल मिलाकर सर्वदमन को इतना मिल जाता था कि वे इत्मीनान से ग्रामीण-राजनीति का संचालन कर सकें ।

एक दिन सर्वदमन जोड़-बाकी लगाकर कहते हैं — " दादा , अगर तुम और शत्रुघ्नसिंह अपने पचीस-पचीस आदमियों के साथ मर जाओ तो फिर मैं क्या , मेरी तरफ का कोई भी आदमी दूसरी तरफ के किसी भी आदमी से पचास वोट ज्यादा ले गिरेगा । क्योंकि गांव के वोटरों में उस तरफ से सच-मुच मर मिटने वाले ज़्यादा-से-ज़्यादा पचीस आदमी निकलेंगे , जबकि हमारी तरफ से ऐसे आदमी चालीस से भी ज़्यादा हैं । उधर से पचीस आदमी अगर मर जायें तो समझ लो , उनका पूरा मुहल्ला मर गया , जबकि हमारे पचीस आदमियों के मर जाने के बाद भी मैदान हमारे बाकी पन्द्रह आदमियों के हाथ में रहेगा । "72

चुनाव के तीन दिन पहले रिपुदमन ने शत्रुघ्नसिंह तथा उसके पचीस आदमियों के खिलाफ़ एक दरख्वास्त दी कि उन्हें उनसे जान व माल का खतरा है और चुनाव में शांति-भंग का अंदेशा है । जवाब में शत्रुघ्नसिंह ने भी ऐसी ही एक दरख्वास्त दी । चुनाव के एक दिन पहले दोनों उम्मीदवारों और दोनों के पचीस-पचीस समर्थकों की पेशी हुई । मैजिस्ट्रेट ने रिपुदमन तथा उनके समर्थकों से जमानत और मुचलके मांगे । रिपुदमन ने बड़े विनम्र व दयनीय ढंग से कहा — " हुज़ूर , हम सब जमानत और मुचलके नहीं देंगे । हमारी बात याद रखिएगा । कल हमारे गांव में कत्लेआम होगा । बड़ी-से-बड़ी जमानत शत्रुघ्नसिंह और उनके गुण्डों को झगड़ा करने से रोक न पायेगी । हम लोग सीधे-सादे खेतिहर हैं , हम इनका क्या खाकर मुकाबला करेंगे । इसलिए ऐसा कीजिए हुज़ूर कि हमें जमानत न दे सकने के कारण हवालात में बन्द करा दीजिए । हवालात में बन्द हो जाने से हमारी जान तो बच जायगी । सिर्फ़ इतना कीजिए हुज़ूर कि शत्रुघ्नसिंह की ज़मानत का एतबार न कीजिएगा । हमारे खानदान के दो-चार लोग गांव में रह जायें , उनकी जान बचाने का इन्तज़ाम कर दीजिएगा । " 73

अतः मैजिस्ट्रेट ने यही तय किया कि जब रिपुदमनसिंह और उनकी पार्टी चुनाव के दौरान जेल में रहेगी तो शत्रुघ्नसिंह और उनकी पार्टी की भी ज़मानत मंज़ूर न की जाय । अतः उन्हें भी जेल में रहना पड़ेगा । इस प्रकार दोनों उम्मीदवार तथा उनके पचीस-पचीस समर्थक चुनाव वाले दिन पुलिस की हिरासत में रहे । उधर रिपुदमन की ओर से सर्वदमनसिंह चुनाव लड़ने के लिए

मौजूद थे क्योंकि पुलिस की ताईद और वकालत की डिग्री के सहारे वे शांतिप्रिय आदमी समझे जाते थे और उनका हवालात में जाना ज़रूरी नहीं समझा गया था। अतः उन्होंने जमकर चुनाव लड़ा और उसका नतीजा वही निकला जो कागज़ पर पहले वे जोड़ चुके थे। चुनाव जीतने का यह तरीका रामनगर के नाम से पेटेंट हुआ।

नेवादा वाला तरीका कुछ ज्यादा आदर्शवादी था। रामनगर वाली "थ्यौरी" में जहां कानूनी दांव-पेच लगाए गए, वहां नेवादा वाली "थ्यौरी" में इसे धार्मिक रंग दिया गया। वहां कई जातियों के लोग चुनाव में प्रत्याशी थे किन्तु मुख्य स्पर्द्धा केवल दो में थी जिसे ऋग्वेद में पुरुष-ब्रह्म का क्रमशः मुंह और पैर माना गया है। आधुनिक संदर्भ से देखें तो यह ब्राह्मणों और हरिजनों का संघर्ष था। ब्राह्मण उम्मीदवार अपनी बात को सांस्कृतिक ढंग से समझाता था कि " कोई दौड़-धूप का ऐसा काम — जिसमें पैरों की आवश्यकता हो — जैसे न्याय-पंचायत के चपरासी का काम — निश्चित रूप से शूद्र को ही मिलना चाहिए, पर प्रधान के पद के लिए शूद्र का खड़ा होना वेद-विपरीत बात होगी।" [74]

उन्हीं दिनों गांव में एक बाबाजी-महाराज आयें (या लाये गए) जिनके फिल्मी तर्जों पर आधारित भजनों ने गांव के वातावरण को भक्ति में सराबोर कर दिया। भजन करते-करते भांग की मस्ती में कई बार वे धार्मिक प्रवचन देने लगते। ऐसे ही चुनाव वाले दिन उन्होंने भंग, गांजे और भजन-कीर्तन के माहौल में एक इशारा-सा दे दिया कि इस गांव का प्रधान बड़ा धर्मात्मा है। इस पर एक भंगेड़ी ने प्रतिवाद किया कि अभी तो इस गांव में प्रधान चुना ही नहीं गया, तब बाबाजी ने फिर इशारा किया कि हमारे भगवान ने तो चुनाव कर दिया है। संक्षेप में नशा उतरने के पहले ही लोगों को मालूम हो गया कि ब्राह्मण उम्मीदवार को ही भगवान ने स्वयं प्रधान के रूप में चुन लिया है। अतः उसे वोट न देना भगवानजी की मरजी के खिलाफ़ जाना होगा। अतः लात (पैर-हरिजन) सुन्न पड़ गई और मुंह (ब्राह्मण) की विजय हुई। " इस तरह पेटेंट किया हुआ तरीका चुनाव-संहिता में नेवादा वाली पद्धति के नाम से दर्ज हुआ।

डा० लक्ष्मीनारायण लाल के उपन्यास " प्रेम अपवित्र नदी" में इसी पद्धति का और बड़े पैमाने पर प्रयोग हुआ है। पंचानन नामक एक चोर

को विश्वविख्यात स्वामी मस्तानंद के रूप में घोषित कर विष्णुपद नामक एक प्रामाणिक एवं निष्ठावान सांसद को हराने के लिए सांप्रदायिक तत्त्वों को भड़काने की एक पूह= पूरी योजना बनाई जाती है । " पंचानन एक रात चोरी करके दिन में पुलिस से बचाव के लिए सराय रूहेल्ला के एक बाग में साधु के भेस में बैठा आराम कर रहा था । उस अंग्रेज[75] के साथ लोग उसीसे जा टकराए । लोगोंने जब उसे पूछा : " महाराज , हम आपसे कुछ सत्संग करने आए हैं । " तब उसके मुंह से सिर्फ़ यही फूटा : " बड़बड़-बड़बड़ । " लोग उससे आश्चर्यचकित रह गए । वह हर बात में सिर्फ़ "बड़बड़-बड़बड़ " कहता था — " महाराज , आपका नाम ? " "बड़बड़-बड़बड़ " आपका निवासस्थान ? " — "बड़बड़-बड़बड़ । " आपका धर्म ? " — " बड़बड़-बड़बड़ । " आपका दर्शन ? " — " बड़बड़-बड़बड़ । " [76] बस उस अंग्रेज का काम बन आया । उसने योजना बना ली । " वह इसे अपने संग विदेश ले जाएगा । उसे " डिवाइन-लाइट " के नाम से विदेशों में प्रसिद्ध करेगा । बड़े-बड़े स्थानों पर उसके उपदेश प्रसारित और प्रचारित करेगा । बड़े-बड़े अखबारों में उसके चित्र छपेंगे । उसके नाम से किताबें प्रकाशित की जाएंगी । महापुरुषों के साथ उसके चित्र लिए जाएंगे और उसे " मस्तानंद " के रूप में अंतर्राष्ट्रीय नाम मिलेगा । फिर वह दो वर्षों बाद वायुयान से दिल्ली वापस लाया जाएगा । " [77]

इस प्रकार पंचानन चोर को "स्वामी मस्तानंद " बना दिया जाता है । उसे इंग्लैंड , स्पेन , हहक्‍ि इटली , स्वीडन और फ्रांस आदि देशों की यात्रा करवायी जाती है । इस बीच में पूरे भारतवर्ष में "मस्तानंद " के असंख्य शिष्य बनकर तैयार हो जाते हैं । एक स्थान पर वह स्वयं विष्णुपद से कहता है — " मैं अब वह पंचानन नहीं । तुम जैसे सैंकड़ों लोग मेरे शिष्य हैं । मेरी शक्ति का अंदाज़ तू नहीं कर सकता । मेरे पास धन है , साधन हैं , सुन्दरियां हैं , मैं किसीको भी खरीद सकता हूं । बोल तेरी इच्छा क्या है ... ? " [78]

जब विष्णुपद अपने अखबार में उसका भण्डाफोड़ करता है तो उसके शिष्य उसके कार्यालय में आग लगा देते हैं । अगले दिन विरोधी पक्ष से जब प्रेस की आज़ादी और धर्म के नाम पर "फासिज़्म " का सवाल लोकसभा में उठाया गया तो मंत्री ने उसका उत्तर देते हुए कहा — " हमारा धर्म-निरपेक्ष राज्य

है । हम सह-अस्तित्व और व्यक्ति-स्वतंत्रता में विश्वास रखते हैं । हमें धैर्य
और उदारता से काम लेना चाहिए । हम विश्व के सबसे बड़े प्रजातंत्र के राष्ट्र के नागरिक हैं ... । "[79] और इसी पंचानन चोर को "मस्तानंद" बनाकर उसके राजनीतिक उपयोग से विष्णुपद का काँटा दूर ◆ किया जाता है । अभिप्राय कि "नेवादा वाली पद्धति का यह परिवर्द्धित राष्ट्रीय-स्वरूप है ।

चुनाव-संहिता [9] का "महिपालपुर" वाला तरीका शुद्ध वैज्ञानिक और सबसे सीधा है । इसका विकास एक चुनाव-अधिकारी की गलती से हुआ । बाद में इस गलती को जनता-जनार्दन द्वारा मान्यता मिल जाने पर एक नया "पैटेण्ट" स्थापित हो गया ।

एक बार चुनाव कहीं बारह बजे होने थे, पर चुनाव-अधिकारी की घड़ी सवा घण्टा आगे थी । नतीजा यह हुआ कि चुनाव अधिकारी ने कुछ उम्मीदवारों के विरोध के बावजूद, पौने ग्यारह बजे ही, जितने वोटर और उम्मीदवार आ गए थे, चुनाव संपन्न करा लिया । इस चुनाव के खिलाफ़ कुछ लोगों ने याचिका दाखिल की । वह मुकदमा तीन साल चला " पर यह न साबित होना था, और न हुआ कि चुनाव-अधिकारी ने कोई गलती की है । उसने जिसे सभापति घोषित कर दिया था, वह अपनी घड़ी को हमेशा के लिए सवा घण्टा तेज करके गाँव पर यथाविधि हुकूमत करता रहा । बाकी उम्मीदवार बकौल छोटे पहलवान, घड़ी की जगह घण्टा लेकर बैठे रहे ।"[80] शिवपालगंज में सनीचर इस पद्धति के द्वारा विजयी हुए थे ।

हिमांशु श्रीवास्तव के उपन्यास "नदी फिर बह चली" में चुनाव की सरगर्मियों में जातिवाद का "स्फड़"[81] छोड़ा जाता है । मुखिया के चुनाव में गांव के जमींदार जनार्दनराय का एम.ए.बी.एफ. [मैट्रिक एपियर बट फेल] भतीजा खड़ा रहता है, तब राजपूत टोली के लोग प्रचार करते हैं — "यदि हम लोगों ने जनार्दनराय के भतीजे को मुखिया चुन लिया, तो राजपूतों का हाल कुत्तों का हाल हो जायगा । अगर जात और मूँछ की लाज रखनी है, तो राजपूत को मुखिया बनाओ ।"[82] परिणामस्वरूप राजपूत प्रत्याशी बाबू तेगासिंह जीत जाते हैं, परंतु गुटबंदी के "पेट्रियाट" के कारण उनकी हत्या कर दी जाती है ।[83]

डा० रामदरश मिश्र के उपन्यास "जल टूटता हुआ" में सतीश

और रामकुमार को हराने के लिए हर प्रकार की कोशिश की जाती है । जमींदार महिपसिंह के भय के कारण हृदय से न चाहते हुए भी मास्टरजी को सतीश के खिलाफ़ चुनाव लड़ना पड़ता है , क्योंकि महिपसिंह सतीश को हराने के लिए उसके मतों को जातिगत आधार पर विभाजित करवाना चाहते हैं । दलसिंगार मगुआ के द्वारा सतीश के चरित्र-हनन का प्रयत्न भी करवाया जाता है कि सतीश महिपसिंह के यहाँ नौकरी करता था , तब उसने हिसाब में अनेक गोटाले किए थे , पर महिपसिंह ने अखिलेशजी का विचार करके उसे छोड़ दिया ।[84]

रामकुमार "कम्यूनिस्ट" था , अतः उसे धर्मभ्रष्ट कहकर लांछित किया जाता है । कुंजू सतीश का प्रचार करता था , अतः उसके खिलाफ़ दलसिंगार मउगा तथा दीनदयाल दारोगा से मिलकर एक षडयंत्र की रचना करते हैं । दीन-दयाल चुनाव-स्थल पर गट्टे और गुड़ की दूकान लगवा बैठे लेते हैं ।[85]

डा० शिवप्रसादसिंह कृत उपन्यास " अलग अलग वैतरणी " में पुराने जमींदार जैपालसिंह अपने प्रतिस्पर्द्धी सुरजूसिंह को हराने के लिए सुखदेव-राम जैसे डमी उम्मीदवार को खड़ा कर देते हैं । सुरजूसिंह के मतों को तोड़ने के लिए वे स्वयं भी चुनाव के मैदान में उतरते हैं । इस प्रकार अपने मं गुर्गे को जिताया जाता है , ताकि उसके द्वारा गांव के शासन की लगाम अपने ही हाथों में बनी रहे ।

चुनाव के हथकंडों का बड़ा ही जटिल स्वरूप हमें डा० राम-दरश मिश्र के लघु उपन्यास " सूखता हुआ तालाब" में उपलब्ध होता है । भत- भूत-प्रेत , ओझागिरी, ग्रामीण लोक-देवता (डीह बाबा) तथा स्त्री-पुरुष के यौन-संबंध भी यहाँ राजनीति द्वारा परिचालित होते हैं । शिवलाल की लड़की को उसके ही पट्टीदार मास्टर धर्मेन्द्र से गर्भ रहता है , तब शिवलाल का लड़का (लड़की का सगा भाई) इस घटना का राजनीतिक लाभ भुनाने के हिसाब से इसका दोष देवप्रकाश के पुत्र रवीन्द्र पर थोपना चाहता है । गांव की यह गर्हित , गन्दी , घिनौनी राजनीति देवप्रकाश जैसे सात्विक प्रकृति के व्यक्ति पर भी बुरी तरह से काबिज़ होती है कि एक बार धर्मेन्द्र की बहन लीला को पडोसी गांव के रमदौना अहिर के साथ भगाने की बात अपने पुत्र रवीन्द्र से करते हैं , ताकि प्रतिस्पर्द्धियों का मुंह काला हो । वैसे पुराने

ग्रामीण-मूल्यों के हिसाब से अपने गांव की लड़की के विषय में ऐसा सोचना भी पाप समझा जाता था । इसी उपन्यास के मोतीलाल को नीचा दिखाने के लिए बनारसी और जलेसर की सहायता से "पेटमड़ुआ "[86] वाले प्रसंग को योजनाबद्ध तरीके से जान-बूझकर उभारा जाता है । मोतीराम का अपनी "भयउ" {छोटे-भाई की विधवा पत्नी} से शारीरिक संबंध चलता है । इस बात पर उसकी फजहती कराने के लिए बनारसी और जलेसर एक नाटक-सा करते हैं । जलेसर " प्रेतबाधा " का ढोंग रचता है । बनारसी "डीहबाबा" का ओझा है । जब जलेसर को बनारसी के सामने लाया जाता है , तब वह अभुवाते हुए घोषित करता है कि उसे तो मोतीलाल की "भयउ" के "पेटमड़ुआ" की पकड़ हो गई है ।[87] तात्पर्य यह कि ग्राम-देवताओं {डीह बाबा आदि को} को भी इस गन्दी राजनीति में घसीटा जाता है ।

उक्त सभी उदाहरणों के आकलन से एक तथ्य सहजतया उभरकर प्रत्यक्ष होता है कि ग्रामीण तबकों में भी चुनाव के घिनौने-से-घिनौने तरीके प्रयुक्त होते हैं , जिनके कारण योग्य व निष्ठावान लोग तो एक तरफ होते जा रहे हैं और उनके स्थान पर आ रहे हैं मस्तानंद , गंजा चौधरी , हरि-गोस्वामी {प्रेम अपवित्र नदी} ; वैद्यजी ,सनीचर , गयादीन {राग दर-बारी} ; मोतीलाल , शिवलाल , शामदेव {सूखता हुआ तालाब} ; परस-राम {आधागांव} ; दीनदयाल , महिपसिंह, दौलतराय, दलसिंगार मउगा {जल टूटता हुआ} ; जैसे निहायत भ्रष्ट , बेहया , निर्लज्ज, नफ्फट , नंगे लोग ।

<u>पुलिस का रवैया</u> : भ्रष्ट राजनीतिक तरीकों के कारण स्वातंत्र्योत्तर काल में भी पुलिस के रवैये में कोई खास परिवर्तन नहीं आया है , बल्कि भ्रष्टाचार एवं शोषण के नये आयाम ही खुलते गए हैं । यह प्रायः देखा जाता है कि गांव में दो-तीन जो सत्ता-संपन्न--धन-संपन्न लोग होते हैं , उनका पुलिस के साथ बड़ा घनिष्ठ संबंध होता है । पुलिस का जो भी नया अधिकारी आता है , उसके साथ वे अच्छा संबंध बना लेते हैं , और फिर अपनी उस पहुंच व धाक के प्रयोग से वे गरीब ग्रामीण लोगों पर अत्याचार व शोषण का चक्र चलाते रहते हैं । कई बार वे निरीह व निर्दोष लोगों को भी उनके इशारों पर मारते-पीटते रहते हैं , ताकि उनका आतंक